जीवन्मुक्त अवस्था

लेखक
परम सन्त कैप्टन लालचन्द जी महाराज

प्रकाशिका
आचार्या डा० कमला देवी

पता:-
श्री जयमल सिंह एडवोकेट
कोठी न० 332, सैक्टर 15.ए
हिसार - 125001 (हरियाणा)
फोन न० : 01662-244725
मो० : 94164-75568, 94160-58395

सर्वाधिकार सुरक्षित (अक्टूबर, 2009)

इस पुस्तक का कोई भी अंश किसी माध्यम से प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना प्रकाशित करना अविधिमान्य होगा।

मूल्य : 10 रु०

अनुक्रमणिका

क्र०	शीर्षक	पृ० सं०
1.	मंगलाचरण	4
2.	प्राक्कथन	5
3.	भूमिका	7
4.	मनुष्य की सुरत का बन्धन	9
5.	जीवन्मुक्त पुरुष की रहनी	12
6.	दु:ख-सुख का कारण और उपाय	16
7.	कर्मफल	20
8.	जीवन्मुक्त अवस्था के लिए शरीर, मन व आत्मा की समता	24
9.	शरणागत अवस्था	28
10.	सिद्धि शक्ति व चमत्कार	31
11.	चेतावनी	36
12.	सन्तमत	43
13.	साध-सन्त महिमा	49
14.	परमात्मा मनुष्य के घट में है	55
15.	योग-विधि	59
16.	मनुष्य का रक्षक कौन?	65
17.	योग और विज्ञान	71
18.	मुक्त-अवस्था	77

मंगलाचरण

चल सतगुरु की हाट, ज्ञान बुद्धि लाईये।
कीजे साहेब से हेत, परम पद पाईये।।

साहिब सब कुछ दीन्ह, देत कुछ ना रहो।
हम ही अभागिन नार, सुख तजि दुख लयो।।

गई थी पिया के महल, पिया संग ना रची।

हिरदे कपट रहो छाय, मान लज्जा भरी।।
जहंवा गैल सलहली, चढूं गिर-गिर परुं।
उठूं संभारि संभारि, चरण आगे धरुं।।

जो पीव मिलन का चाव, कौन तेरे लाज है।
अधर मिलो ना जाय, भला दिन आज है।।

भला बना संजोग, प्रेम का चोलना।
तन मन अरपों सीस, साहिब हंस बोलना।।

जो गुरु रुठे होय, तो तुरत मनाईये।
हुइयें दीन अधीन, चूक बकसाइये।।

जो गुरु होय दयाल, दया दिल हेरि है।
कोट कर्म कट जाय, पलक छिन फैरि है।।

कहै कबीर समुझाय, समझ हिरदे धरो।
जुगन जुगन करो काज, ऐसी दुरमति परिहरों।।

✳✳✳✳

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तक जीवन्मुक्त अवस्था सभी पुस्तकों में शिरोमणि रत्न है। अभी तक जो पुस्तकें लिखी गई हैं उनमें प्रवृत्ति मार्ग पर विशेष बल दिया गया है परन्तु यह पुस्तक प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर अथवा भोग में योग की ओर प्रवृत्त करने के लिए विशेष पथ प्रदर्शन करती है। मनुष्य ज्ञान के साथ इस जीवन को खुशी-2 जीते हुए, सांसारिक सभी चुनौतियों व संकटों का सामना करते हुए, साक्षी भाव से सब खेल का आनन्द लेते हुए, किस तरह से मुक्ति का आनन्द लेते हुए अपने इस जीवन को व्यतीत कर सकता है-ये सब सूत्र इस पुस्तक में पिरोए गए हैं जो अनुभव की आधार शिला पर आधारित है।

श्रीमद्भगवद् गीता में स्थितपज्ञ पुरूष के जो लक्षण बताए गए हैं वो सब आज के युग में मेरे परम पूज्य मालिक स्वरूप हजूर कैप्टन लालचन्द जी में मुझे वर्षो की खोज के बाद दृष्टिगोचर हुए। इससे पहले महापुरूष की तलाश करते-2 मेरे यही विचार बन गए थे कि गीता वाले स्थित प्रज्ञ पुरूष शायद शास्त्र तक ही सीमित हैं परन्तु मेरे परम आराध्य गुरु महाराज जी के सम्पर्क में आने पर उनकी रहनी को देखने पर मुझे यह यकीन हो गया कि ये महापुरुष आज के युग में स्थितप्रज्ञ पुरुष के ज्वलन्त उदाहरण है अध्यात्म मार्ग में इन्होंने अपनी रहनी के अनुसार जो सच्चाई अभिव्यक्त की है वह आज कहीं दिखाई नहीं देती। सभी महापुरुष अपने प्रवचनों में मुक्ति की चर्चा करते हैं परन्तु मरने के बाद वाली मुक्ति के बारे में तो कोई कुछ बता नहीं सकता और जीवित अवस्था में रहते हुए संसार के सब खेल खेलते हुए तो कोई मुक्त नजर नहीं आता क्योंकि भाषण करना और है तथा इस मुक्त अवस्था में जीवन जीना और है। जैसी कथनी वैसी रहनी वाले ये महापुरुष आज के युग में सन्तों के मुकुट मणि हैं। इसका प्रमाण इनकी पुस्तकें हैं जो इनके अनुभव की कसौटी पर लिखी गई हैं।

अगर मनुष्य इस जीवन में सभी भोगों का आनन्द लेते हुए, गृहस्थ का त्याग न करते हुए, सुख से जीवन व्यतीत करते हुए मुक्त होने की इच्छा रखता है तो उसे इस पुस्तक को पढने से विशेष लाभ होगा। कहते हैं कि प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं। अत: पुस्तक के अध्ययन करने पर ही आप जान पायेंगे कि यह पुस्तक एक बहुमूल्य हीरा है।

पुस्तक के प्रकाशन में अपना बहुमूल्य समय निकाल कर सहयोग करने वाली अनुजा राजबाला (गणित प्रवक्ता) अत्यधिक धन्यवाद की पात्र है। वास्तव में इस पुस्तक को प्रकाशित करवाने में अधिकतम योगदान उन्हीं का रहा है क्योंकि अगर वह यह प्रयास न करती तो शायद यह पुस्तक इतनी जल्दी प्रकाशित नहीं हो पाती। अत: उनका जितना धन्यवाद किया जाए वह कम है।

दूसरे भ्राता श्री एडवोकेट जयमल सिंह जी के धन्यवाद के लिए तो मेरे पास शब्द ही नहीं है। समय का अभाव होने पर भी उन्होंने इस पुस्तक को संवारने में अपना अधिकतम बहुमूल्य समय दिया है। अत: उनके प्रति मैं अपना अत्यधिक आभार प्रकट करती हूँ।

पुस्तक के प्रकाशन में अपना सराहनीय आर्थिक योगदान देने वाले कुबेर स्वरूप श्री जे.सी. गुप्ता जी (U.K.) के प्रति अत्यधिक कृतज्ञता प्रकट करना भी मेरा परम कर्त्तव्य है जो आर्थिक राशि देने में कभी संकोच ही नहीं करते। इसके साथ ही पुस्तक प्रकाशन में अपना आर्थिक सहयोग देने वाले श्री जयपाल सिंह राठी (U.S.A.) भी अत्यधिक धन्यवाद के पात्र है।

डा० कमला देवी
प्राध्यापिका (संस्कृत विभाग)
एम.एम. कालिज
फतेहाबाद (हरियाणा)
फोन न०:- 01667-225520
मो०:- 9416475568

भूमिका

मैं सन् 1962 से अपने परम पूज्य गुरु महाराज पं० फकीरचन्द जी के ऋण से उऋण होने के लिए यह सत्संग देने का काम करता आ रहा हूँ क्योंकि उन्होंने उस समय मुझे कहा था कि आपने अध्यात्म ज्ञान के गूढ तत्व को जान लिया है व अनुभव कर लिया है। अब अपने अनुभव के आधार पर सुन्दर ढंग से जीवन जीते हुए इस ज्ञान को लोगों में बांटते रहना और मैं तब से यह काम कर रहा हूँ और अब मेरी विशेष शिष्या डा० कमला के अनुरोध पर ये पुस्तकें लिख रहा हूँ क्योंकि मेरे गुरु महाराज जी का अधिकांश साहित्य लुप्त हो चुका है। उसे पुनः जीवित करने के लिए ही शायद मौज ने ये पुस्तकें लिखवाने के लिए डा० कमला को निमित्त बनाया है।

मैंने अपनी पुस्तकों में अधिकतर प्रवृत्ति व निवृत्ति दोनों ही मार्गों पर प्रकाश डाला है। सत्संग मैं अधिकतर प्रवृत्ति मार्ग पर देता हूँ जबकि मेरी रहनी निवृत्ति मार्ग की है। लगभग 46-47 वर्ष से मैं जीवन्मुक्त अवस्था में जीवन जीता आ रहा हूँ। हां कभी-2 बाहर के प्रभावों से नीचे आ जाता हूँ लेकिन फिर जल्दी ही सम्भल जाता हूँ। अपने निज रूप का अनुभव होने के पश्चात् अपना शरीर छोड़ने तक जो साक्षी भाव से आनन्दमय जीवन जिया जाता है उसी का नाम जीवन्मुक्त अवस्था है।

जब मनुष्य सत्संग और योग साधन से सारे घटिया व बढ़िया संस्कारों से ऊपर उठ जाता है तब आगे का मार्ग मिल जाता है। मैंने अपनी पुस्तकों में जीवन जीने का ढंग व योग साधन की विधियों के बारे में स्पष्ट लिखा है परन्तु प्रस्तुत पुस्तक में मैंने विशेष रूप से जीवन्मुक्त अवस्था पर अपनी योग्यता व अनुभव के अनुसार मोक्ष पद के जिज्ञासुओं के लिए पथ-प्रदर्शन किया है। इस मनुष्य जीवन में जो दुख आते हैं वह केवल उसकी अज्ञानता के कारण हैं। अतः मनुष्य को ज्ञान की सख्त आवश्यकता है। धर्म-कर्म में जो कुछ यत्न, साधन व नियम मनुष्य करता

है उन सबका उद्देश्य ज्ञान-प्राप्ति है। ज्ञान का कोई अन्त नहीं है। अपने-2 स्थान पर सभी प्रकार का ज्ञान आवश्यकतानुसार प्राप्त किया जाए परन्तु यह अध्यात्म ज्ञान मनुष्य को सभी प्रकार के दुखों से मुक्त करने वाला है। मानव कल्याण के लिए यह ज्ञान अति उत्तम है जो ज्ञानी पुरूष की संगत से सत्संग द्वारा दिया जाता है।

'राम कृपा नाशे सब रोगा।
जेहि भांति बने संजोगा।।'

'सतगुरु वैद्य वचन विश्वासा।
संजम यह न विषय की आसा।।'

मुख्य बात यह है कि मनुष्य इस लोक में अपने आपको जाने और फिर इस संसार में चिन्ता रहित होकर आनन्द व खुशी से रहते हुए जीवन्मुक्त अवस्था में जीवन जीये। मनुष्य जो चेतन का एक बुलबुला है यह उसकी मौज से उत्पन्न होता है और फिर उसी में समा जाता है। इस चेतन रूपी बुलबुले पर उसी की अज्ञानता के कारण तरह-तरह के भ्रमों व संस्कारों के पर्दे पड़े हैं जिससे वह दुख व शोक को महसूस करता है। सत्संग व साधन से अज्ञानता के वह पर्दे हट जाते हैं और मनुष्य को अपने रूप का ज्ञान हो जाता है और ज्ञान होने पर वह जीवन्मुक्त अवस्था में आ जाता है।

मुझे विश्वास है कि मेरी ये पुस्तकें जिज्ञासुओं के भ्रम व शंकाओं को दूर कर उन्हें जीवन्मुक्त शैली से जीवन जीने की प्रेरणा देंगी। आगे सब मौज पर है।

कैप्टन लालचन्द
गांव, पोस्ट - दांदू
त० व जिला - चुरू
(राजस्थान)- 331001
फोन न०:- 01562-283121

मनुष्य की सुरत का बन्धन

मैंने अब तक तेरह पुस्तकें लिखी हैं जिनमें मेरे जीवन का अनुभव, मेरे जीवन का सार व केवल मनुष्य के जीने की शैली को वर्णित किया गया है। अब मैं इस पुस्तक के माध्यम से- मुक्ति क्या है? इसे मेरे अनुभव के आधार पर लिख रहा हूँ। मुक्ति का अर्थ संसारी लोग देह से प्राण निकलने मात्र को समझते हैं। इसी भ्रम को दूर करने के लिए इस पुस्तक द्वारा ज्ञान देना मेरा प्रयास मात्र है क्योंकि असल में जो सच्चाई केवल अनुभव के आधार पर जानी जाती है उसे शब्दों में बान्धा नहीं जा सकता।

हर मानव मात्र में चेतनता का स्वरूप सुरत है जो उस परम तत्व से हर वक्त जुड़ी रहती है। हमारी यह सुरत हमारे ही अज्ञानवश बन्धन में बन्धी हुई है। हर मनुष्य संसार की बाहरी वस्तुओं को देखकर उन्हें उत्तम जानकर उन्हें पाने का प्रयास करता है और प्राप्त कर लेने पर इनके साथ उसका गहरा सम्बन्ध बन जाता है और यह गहरा सम्बन्ध ही बन्धन कहलाता है। मनुष्य के जीवन का आधार मनुष्य की सोच, इच्छा, कल्पना, भावना व आगे बढने की प्रवृत्ति है। अगर मनुष्य में ये सब न हों तो वह केवल मानव का शरीर मात्र है इससे अधिक कुछ नहीं। इस काल लोक में आकर मनुष्य एक भूल कर बैठा कि वह अपने शरीर से लेकर धन जायदाद, पद आदि सब कुछ को अपना खुद का मान बैठा और वह इन सबसे बुरी तरह बन्ध गया। वास्तव में मनुष्य बन्धन में है नहीं केवल बन्धन मान बैठा। यही भूल-भुलैया है। सन्त महात्मा मनुष्य को भूल-भुलैया से निकालने के लिए आते हैं। अगर कोई इससे निकलना चाहता है तो निकल सकता है वर्ना लख चौरासी तो है ही। सन्त वाणी में बन्धन दो प्रकार के लिखे हैं।

(1) मोटे (स्थूल) बन्धन (2) झीने (सूक्ष्म) बन्धन

यह मोटे बन्धन क्या है? इस निम्न शब्द में देखिए-

बन्धे तुम गाढे बन्धन आन। (टेक)

'पहला बन्धन पड़ा देह का, दूसरा त्रिया जान।
तीसरा बन्धन पुत्र विचारो, चौथा नाती मान।।'
'नाती के कहिं नाती होवे, फिर कहो कौन ठिकान।
धन सम्पति और हाट हवेली, यह बन्धन क्या करुं बखान।।'
'चौंसठ पैंसठ सतसठ रसरी, बांध लिया बहु विधि तान।
कैसे छूटन होय तुम्हारा, गहरे खूंटे गड़े निदान।।'
'मरे बिना तुम छूटो नाहीं, जीते जी तुम सुनो न कान।
जगत लाज और कुल मर्यादा, यह बन्धन सब ऊपर ठान।।'
'लीक पुरानी कभी न छोड़ो, जो छोड़ो तो जग की हान।
क्या-2 कहूं मैं विपत्त तुम्हारी, भुगतो जूनी भूत मसान।।'
'तुम जो जगत सत्य कर पकड़ा, क्योंकर पावो नाम निशान।
बेड़ी ठोक हथकड़ी बांधे, काल कोठरी कष्ट समान।।'
'काल दुष्ट तुम बहु विधि बांधा, तुम खुश होकर रहो गलतान।
ऐसे मूर्ख तुम सुख जाना, क्या कहूं अजब सुजान।।'
'शर्म करो कुछ लज्जा ठानो, नहीं जमपुर का भोगो डान।
सतगुरु शरण गहो अब, तो कुछ पाओ उनसे दान।।'

इस शब्द में मनुष्य के स्थूल बन्धनों की चर्चा की है जिनमें मनुष्य मृत्यु पर्यन्त इनको अपना मानता हुआ बन्धा रहता है। वास्तव में मनुष्य अकेला आया है और उसे अकेले ही जाना है। यह सब मोटे बन्धन उसके लेन देन तक सीमित है। कोई कर्जा लेने आता है तो कोई देने आता है। सतगुरु के सत्संग से जब बात समझ में आ जाती है तो ये बन्धन ढीले हो जाते हैं और उसे वैराग हो जाता है फिर वह मोक्ष पद का अधिकारी बन जाता है।

मनुष्य के सूक्ष्म बन्धन उसके मन के हैं। मन पर पड़े संस्कार व भ्रम ही उसका बन्धन है। मनुष्य अपने मन से निकलने वाले विचारों में ही उलझ कर रह जाता है और उनसे बाहर आने का उसे कोई रास्ता नजर नहीं आता। वह इन विचारों से तभी निकल सकता है जब वह सतगुरु द्वारा बताए गए नाम का जाप करता है। जैस कहा है –

'मोटे बन्धन जगत के, गुरु भक्ति से काट।
झीने बन्धन मन के, कटे नाम प्रताप।।'

सतगुरु जीव को ज्ञान देता है कि ये सब बन्धन उसकी अज्ञानता के कारण हैं। वास्तव में वह परमात्मा का ही एक छोटा सा अंश है –

'ईश्वर अंश जीव अविनाशी।
चेतन विमल सहज सुख रासी।।'
'सो माया वश बन्धो गुसाई।
आप ही बन्धो मर्कट की नाई।।'

अर्थात् परमात्मा का अंशरूप मनुष्य की यह सुरत चेतन, विमल व सहज सुख स्वरूप है परन्तु माया के वश में यह यहां मर्कट की तरह बन्ध गई है। जैस बन्दर घड़े में हाथ डालकर लड्डू इत्यादि की मुठ्ठी भर लेता है, मुठ्ठी खोलता नहीं और घड़े को साथ-2 लिए घूमता है तो यही हालत मनुष्य की है जो माया के बन्धन में फंसा हुआ दुख-सुख भोग रहा है। जब जीव को सतगुरु के सत्संग व योग साधना से यह समझ आ जायेगी कि यह बन्धन हैं नहीं अपितु उसने अज्ञानता के कारण मान रखे हैं तो वह बाहर के प्रभावों से प्रभावित नहीं होगा और उसकी गुरु कृपा से रहनी बन जायेगी। इसके लिए दाता दयाल ने निम्न शब्द में लिखा है –

<u>शब्द</u>

'पिला दे भक्ति का ऐसा प्याला, ममत्व मैं अपने मन का खो दूं।
न बुद्धि रहे न सुधि रहे कुछ, अहंपना सारा मन का खो दूं।।'
'जपूं तपूं और भजूं न सुमिरू, न योग युक्ति के पथ में दौडू।
न नाम की माला हाथ में हो, हिये की माला का मनका खो दूं।।'
'वह राग क्या जिसमें राग आये, वह त्याग क्या? त्याग में फंसाए।
न बन्ध और मुक्ति का हो खटका, विवेक घर और बन का खो दूं।।'
'न दुःख की दुविधा न सुख की चिन्ता, न चित्त की दुचिता का भय हो किञ्चित।
न ज्ञान और ध्यान की हो इच्छा, विचार साधन यत्न का खो दूं।।'
'न द्वन्द्व निर्द्वन्द्व को हो झगड़ा, न द्वैत अद्वैत का हो बखेड़ा।
झुका के सिर राधास्वामी पद में, विचार तक दासापन का खो दूं।।'

✳✳✳✳

जीवन्मुक्त पुरुष की रहनी

हर समय हर अवस्था में दुख, चिन्ता, फिक्र से रहित प्रसन्नचित व निर्भयता के साथ रहना ही जीवन्मुक्त अवस्था है। संसार में ऐसे महापुरुष विरले ही मिलते हैं जो हर अवस्था में चिन्ता रहित, बेफिक्र व अडोल रहते है। साधारण मनुष्य मन में उठने वाले भाव व विचारो कों सत्य मानकर उनमें खेलते रहते है और दुखी–सुखी होते रहते है और यही उनका बन्धन है परन्तु जब वे ज्ञान होने पर इन विचारों को असत्य जानकर इस जीवन के खेल में रहते हुए खेल के प्रभाव में नही फसतें तो वह मुक्त हो जाते है। परन्तु यह मुक्ति की अवस्था उन्हें मिलेगी तो इसी जीवित अवस्था में मनुष्य जीवन में ही मिलेगी अर्थात् मनुष्य को यह ज्ञान इस मनुष्य जीवन में ही मिल सकता है। मरने के बाद वाली मुक्ति के बारे में किसी ने आकर नहीं बताया। जैसे–

'तन छूटे जीव मिलन कहत है, सो सब झूठी आसा।
अब हुँ मिला सो तब हुं मिलेगा, नहिं तो जमपुर वासा।।'

इसीलिए कबीर साहब कहते हैं–

'साधो भाई जीवित हो करो आसा।
जीवत समझै जीवत बूझै, जीवत मुक्ति निवासा।
जियत कर्म की फांसी न काटी, मुए मुक्ति की आसा।।'

इसी जीवन्मुक्त अवस्था पर कबीर ने एक ओर शब्द कहा है–

'जीवन मुक्त सोई मुक्ता हो।
जब लग जीवन मुक्ता नाहीं, तब लग दुख सुख भुगता हो।।'

'देह संग ना होये मुक्ता, मुये मुक्ति कहां होई हो।
तीरथ वासी होये न मुक्ता, मुक्ति न धरनी सोई हो।।'

'जीवत भ्रम की फांस न काटी, मुये मुक्ति की आसा हो।
जल प्यासा जैसे नर कोई, सपने फिरे प्यासा हो।।'

'है अतीत बन्धन तें छूटै, जह इच्छा तहँ जाई हो।
बिना अतीत सदा बन्धन में, कितहू जानि न पाई हो।।'

'आवागमन से गए छूटि के, सुमिर नाम अविनासी हो।
कहै कबीर सोई जन गुरू हैं, काटी भ्रम की फांसी हो।।'

मनुष्य सतगुरु से ज्ञान लेकर रहस्य समझ कर अपने इस लोक के जीवन को सुख, दुख व आनन्द का बनाकर अपने निज रूप का अनुभव इसी जीवन में कर सकता है और जीवन्मुक्त की अवस्था में जीवन जी सकता है। इस अवस्था को पाने के लिए उसे गृहस्थ त्याग की जरूरत नहीं है अपितु गृहस्थ में जीवन जीते हुए, अपनी आजीविका के लिए आवश्यक कार्य करते हुए किसी ज्ञानी या जीवित मुक्त पुरूष की संगत से वह सहज ही इस अवस्था को पा सकता है। यह बहुत आसान बात है। बस जरूरत है तो मन में सच्ची तड़प, लगन और जीवित मुक्त पुरुष की संगत की। यह जीवित मुक्त पुरुष इस संसार में किस प्रकार रहता है अर्थात उसकी रहनी कैसी होती है? इसे निम्न शब्द में देखिए–

'भाई कोई सतगुरु सन्त कहावै, जो नैनन अलख लखावै।'

'डोलत डिगै न बोलत बिसरै, जब उपदेश दृढ़ावै।
प्राण पूज्य क्रिया ते न्यारा, सहज समाधि सिखावै।।'

'द्वार न रूधें पवन न रोकै, नाहिं अनहद उरझावै।
यह मन जाय जहाँ लग जब ही, परमात्म दरसावै।।'

'कर्म करे नि:कर्म रहै जो, ऐसी जुगत लखावै।
सदा विलास त्रास नहिं मन में, भोग में जोग जगावै।।'

'धरती त्याग आकाश हुं त्यागै, अधर मढैया छावै।
सुन्न सिखर की सार सिला पर, आसन अचल जमावै।।'

'भीतर रहा सो बाहर देखे, दृजा दृष्टि न आवै।
कहत कबीर बसा है हसां, आवागमन मिटावै।।'

अर्थात् ऐसा जीवित मुक्त व ज्ञानी पुरुष सहज ही नाम का अनुभव करता रहता है जो चलते-फिरते, खाते-पीते हर समय उसके साथ रहता है कभी उससे बिछुड़ता नही है। इस नाम के अनुभव के लिए उसे प्राणायाम करके आंख, कान बन्द करके बैठने की जरूरत नहीं होती क्योंकि वह हर समय परमात्मा तत्व में लीन रहता है और उसे हर स्थान पर हर मनुष्य में परमात्मा का खेल ही नजर आता है। उसे हर समय यह विश्वास रहता है कि मेरा यहां कुछ भी नहीं है इसलिए वह हर काम निष्काम भाव से करता है और शरीर व मन से ऊपर रहता है यानी सब सहारे छोड़कर अपने निज रूप में मस्त रहता है। ऐसा महापुरुष ही जीव को उसके रूप का ज्ञान कराके उसे आवागमन से मुक्त कर सकता है।

अब कबीर ने इस अलख के दर्शन को क्या समझा है- मै नहीं जानता लेकिन मेरा अनुभव कबीर की वाणी से मेल खाता है। मैं अक्सर यह बात अपने सत्सगों में कहता रहता हूं कि मैं अधिकतर उस तत्व से जुड़ा रहता हूं और दुनिया के सारे काम करता हूं। हां कभी-2 बाहर की दुनिया का प्रभाव पड़ने पर मैं मन के मण्डल पर विचारों में आ जाता हूं लेकिन फिर जल्दी ही सम्भल कर उसी जीवन्मुक्त अवस्था में आ जाता हूं। इसलिए मेरी समझ में यह आया है कि यदि मनुष्य स्वंय क्रियात्मक रूप से अपने निज रूप का अनुभव नहीं करता है तो केवल बुद्धि ज्ञान से उसकी ऐसी रहनी बननी मुश्किल है। हां बुद्धि ज्ञान से उसके भ्रम व शंकाएं दूर हो सकती हैं। इसलिए मैं सत्संगियों को अपनी पुस्तकें पढ़ने पर बल देता हूं ताकि उन्हें अध्यात्म संबंधी कोई भ्रम न रहे। भ्रम दूर होने

पर अंतर में केवल साधन की आवश्यकता है और इस साधन के लिए किसी पूर्ण पुरुष का सत्संग अनिवार्य है। पूर्ण पुरुष के बिना यह रहस्य समझ में नहीं आ सकता।

मैं भाग्यशाली हें जो मुझे गुरु कृपा से पहले ही दिन इस नाम की प्राप्ति हो गई और जब 1962 में मुझे इस निज रूप का अनुभव हुआ जिसमें मेरी सुरत उस तत्व में थोड़ी देर के लिए लीन हो गई थी तो मैं इस अवस्था को समझ नहीं सका। अत: जब मैं गुरु जी के दर्शन करने होशियारपुर गया तब उनको यह बात बताई तो उन्होंने लगभग आधे घंटे का सत्संग देकर मुझे इस अवस्था के विषय में समझाया कि अब तुम्हें कोई साधन, यत्न करने की जरूरत नहीं है। अब तुम सहज में मुक्त अवस्था की रहनी में रहते हुए अपने प्रारब्ध कर्मों को भोगते हुए परमात्मा के खेल का आनन्द लेते हुए अपना जीवन व्यतीत करो। यहां जो हो रहा है यह सब उस ईश्वर की लीला है और उस दिन से लेकर आज तक मेरी यही रहनी बन गई है कि-

'जिधर देखता हूं उधर तू ही तू है।
हर शै में जलवा तेरा हूबहू है।।'

मेरे गुरु जी ने उस समय मुझे यह आदेश दिया कि लोगों को मुक्ति की नहीं अपितु इस जीवन की तकलीफों से कैसे बचें और अपना जीवन कैसे अच्छा बनाएं? इस बात की अधिक जरूरत है। अत: तुम इस विषय पर बिना मुआवजा लिए सच्चाई के साथ अपना अनुभव बखान करना और मैं तब से गुरु जी की आज्ञा से निवृत्ति मार्ग में रहते हुए भी प्रवृत्ति मार्ग का सत्संग देता आ रहा हूँ।

✳✳✳✳

दु:ख सुख का कारण और उपाय

इस संसार में हर प्राणी सुख चाहता है। कोई दु:ख नहीं चाहता लेकिन फिर भी वह दु:खी है और उसके दु:ख का कारण उसकी अज्ञानता है। इस विषय में निम्न शब्द देखिए –

'तन धर सुखिया कोई न देखा, जो देखा सो दुखिया हो।
उदय अस्त की बात कहत हूं, सबका किया विवेका हो।।'

'घाटे बाढे सब कोई देखा, क्या गिरही वैरागी हो।
शुक आचार्य दुख के कारण, गर्भ में माया त्यागी हो।।'

'जोगी दुखिया जंगम दुखिया, तापस को दुख दूना हो।
आशा तृष्णा सब घट व्यापी, कोई महल नहीं सूना हो।।'

'सांच कहे तो कोई न माने, झूठा कहा न जाई हो।
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर दुखिया, जिन यह राह चलाई हो।।'

'अवधू दुखिया भूपत दुखिया, दुखी रंक विपरीती हो।
कहे कबीर सकल जग दुखिया, संत सुखी मन जीती हो।।'

कबीर साहब ने इस शब्द में पूर्णतया से सच्चाई व्यक्त की है कि सिवाय संत के यहां कोई भी सुखी नहीं है। यहां तक कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव भी इस दुख से वंचित नहीं हैं। शब्द के अंत में लिखा है– संत सुखी मन जीती हो। संत कौन? जो समता में रहता हो। मन को जीतना क्या है? जो मन से उठने वाले संकल्प व विचारों से ऊपर यानी मन के मंडल से ऊपर रहता हो। ऐसा संत मन के विचारों को मिथ्या (असत्य) जानकर उनमें फंसता नहीं है और न ही वह बाहरी प्रभाव से प्रभावित होता है। अपितु मन के अनुकूल व प्रतिकूल अवस्था में भी उसकी समस्थिति बनी रहती है। बाकी सब मन के चक्कर में रहते हैं। इसलिए दु:खी–सुखी होते रहते हैं क्योंकि जिस लोक में हम रह रहे हैं यह संकल्प व विचारों का है। ये बढ़िया व घटिया विचार हमारे मन में पैदा होते हैं। कुछ समय तक हम

इनसे खेलते हैं और फिर ये पानी के बुलबुले की तरह मिट जाते हैं। यही मनुष्य के जीवन का खेल है।

मनुष्य के ये विचार मन से निकल कर ऊपर ब्रह्माण्ड में जाते रहते हैं। ऊपर जाकर किसी खास जगह से टकराकर रेडियो वेव यानी विकिरण धारा की तरह वे वापिस जहां से चले थे वहीं वापिस आ जाते हैं। जो शुभ संकल्प हैं यानी अच्छे विचार हैं उनका फल मन के अनुकूल खुशी, सुख व लाभ देने वाला होता है जिससे मनुष्य को प्रसन्नता व आनन्द मिलता है। जो घटिया विचार ईर्ष्या, नफरत व क्रोध की हालत में सोचे जाते हैं उनका फल घटिया व मन के प्रतिकूल होगा। जैसे- दुर्घटना, शरीर में रोग, धन का घाटा इत्यादि। तुलसीदास ने इसे रामायण में इस तरह लिखा है-

'जहां सुमति तहां सम्पत्ति नाना।
जहां कुमति तहां विपत्ति नादाना।।'

अब आप स्वयं सोचो कि आप दिन में कितने समय प्रसन्न, हँसमुख रहते हो और सुन्दर विचार रखते हो? ऐसे ही आपके परिवार के दूसरे सदस्य कैसा सोचते हैं? कबीर साहब लिखते हैं-

'बोए पेड़ बबूल का तो आम कहां से खाए।'

अर्थात् मनुष्य दिन भर अधिक समय दुख, नाराजगी, नफरत, ईर्ष्या व द्वेष के विचार रखता है और अपशब्द बोलकर दूसरों का मन दुखाता रहता है और चाहता है सुख जो मुमकिन नहीं है।

इसलिए सुख, खुशी, प्रसन्नता, उमंग व आनन्द का जीवन चाहते हो तो अपने विचारों को सुन्दर बनाओ और घटिया विचारों को त्यागो। हम गृहस्थी हैं। गृहस्थ जीवन को सुखी बनाने के लिए घरेलु शान्ति अनिवार्य है। जहां तक हो सके अपनी आमदनी से ज्यादा खर्च मत करो। यदि खर्चे अधिक हैं तो अपनी आमदनी को बढ़ाने की कोशिश करो। जहां भी काम करो मन लगाकर काम करो और पूरी ईमानदारी

रखो। अपनी नीयत हमेशा ठीक रखो। अगर संतान की जरूरत है तो गृहस्थ भोगो नहीं तो शरीर व मन से ब्रह्मचर्य का पूरा पालन करो। हमेशा अपनी शक्ति और हालत के अनुसार काम करो। जिस घर के सदस्यों में आपस में प्रेम-प्यार नहीं है अपितु रूठामनी व मन-मुटाव है उस घर में कभी खुशी व शांति नहीं रहेगी।

मैंने अपने पूरे जीवन के योग साधन के अनुभव से दुखों का कारण व इलाज बता दिया है। यहां चार दिन का जीवन है। अतः इसे घटिया विचारों से नरक मत बनाओ। यदि आप चिंता, फिकर, डर, भय व क्रोध में हो तो आप नरक में हो क्योंकि नरक नाम दुख का है और यदि आप मीठा बोलते हैं, सुन्दर भाव रखते हैं व खुश रहते हैं तो आप स्वर्ग में हैं क्योंकि स्वर्ग नाम सुख का है और वह अगला स्वर्ग आपको तभी मिलेगा जब आप पहले इस जीवन से खुश व सुखी हैं।

मैं यह ज्ञान पुस्तकों में लिखकर पढ़े-लिखे विद्वान् व बुद्धिमान् सज्जनों को दे रहा हूं और आगे देना चाहता हूं जो धर्म-कर्म के रहस्य को जानने के इच्छुक हैं क्योंकि मैं इन लोगों को गुरु बनाना चाहता हूं ताकि ये लोग पूरी मानवता को ज्ञान दें सकें। यहां मानव अज्ञान से दुखी है। मेरे गुरु महाराज जी ने इस धर्म का नया नाम 'मानव धर्म' रखा है। यानी 'मजहबे-इंसानियत' क्योंकि परमात्मा पूरी मानवता का प्रतीक है। यहां सबकी आत्मा एक जैसी है और सब मानव आपस में भाई-भाई हैं। जैसे-

'मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना।' अज्ञान से मानव ने अपने आपको धर्म की आड़ में मजहबों में बांट लिया है और कोई हिन्दू, कोई मुसलमान तो कोई ईसाई के रूप में अपने को अलग समझने लगा है।

मैंने जो ज्ञान सत्संगों व पुस्तकों में दिया है वह सब सम्प्रदाय के लोगों के लिए है। मैं किसी एक सम्प्रदाय का नहीं हूं अपितु सब सम्प्रदायों

के सज्जन मेरे भाई हैं। मेरी बात समझो और अज्ञान के बादल हटाओ तथा प्रिय व खुशी से अपना जीवन जीओ और हमेशा आशावादी विचार रखो क्योंकि जैसा सोचोगे वैसा ही यह जीवन बन जायेगा यानी 'जैसा ख्याल वैसा हाल', 'जैसी मति वैसी गति'।

यहां Give and take का सिद्धान्त काम करता है। प्रेम करोगे तो प्रेम मिलेगा, सुख दोगे तो सुख मिलेगा, सेवा करोगे तो सेवा मिलेगी, दान दोगे तो धन मिलेगा और दूसरों को दुख दोगे तो दुख मिलेगा। इस सिद्धान्त का प्रयोग पहले आप अपने घर में करके देख लेना फिर दूसरों पर यदि चाहो तो कर लेना। इस प्रकार मनुष्य का यह जीवन उसके विचारों पर निर्भर करता है। मनुष्य जब विचारों से खेलता रहता है तब उसे होश नहीं होता कि वह क्या सोच रहा है? वह नहीं जानता कि वह जो भी सोचेगा उसका फल उसे भोगना पड़ेगा। हम खुली आंख से जो विचार करते हैं, उन विचारों का प्रभाव हलका होता है लेकिन बंद आंखों और मन की एकाग्रता से जो विचारों से खेलते हैं चाहे वह घटिया हो या बढ़िया, उनका प्रभाव शक्तिशाली होता है।

मैंने अपनी योग्यतानुसार टूटे-फूटे शब्दों में आप जिन दुखों से दुखी हो उनका रहस्य विज्ञान के तरीके से समझाने का प्रयास किया है। मैं कोई साधु, संत व महात्मा नहीं हूं। आप सज्जनों की ही तरह गृहस्थी हूं। इसलिए मैं सच्चाई बताकर, सही ज्ञान देकर बुद्धिमान लोगों को गुरु बनाना चाहता हूं क्योंकि गुरु नाम ज्ञान का है किसी मनुष्य का नहीं और मनुष्य को ज्ञान कोई मनुष्य ही देगा और पूरी मानव जाति को यह ज्ञान कोई एक मनुष्य नहीं दे सकता। इसलिए बुद्धिमान् व्यक्ति इस ज्ञान को समझ कर आगे इसका प्रचार करे तो उन्हें लाभ हो सकता है। मुझे औरों का तो पता नहीं हां, अपनी कह सकता हूं कि इस ज्ञान को बांटते-बांटते मैं ज्ञान से भरपूर हो गया हूँ।

✶✶✶✶

कर्मफल

यह कर्म क्या है? मनुष्य के अपने ही विचारों व संकल्पों से संस्कार और संस्कारों से ही शुभ व अशुभ कर्म बनते रहते हैं। अर्थात् हमारे ही मन में से उठने वाले भाव, विचार व संकल्प जिन्हें हम बार-बार याद करते हैं तो वह हमारे कर्म बन जाते हैं। यदि शुभ संकल्प हैं तो शुभ और अशुभ संकल्प हैं तो अशुभ कर्म बन जाते हैं। वही कर्म समय आने पर अपना फल देते हैं। यह कर्म की लीला बहुत गहन है और यह कर्मों का सिलसिला जन्म-जन्मांतरों से चला आ रहा है। कर्म के फल के बारे में महर्षि शिवव्रतलाल जी का एक शब्द देखिए -

'कोई सुख दुख का नहीं दाता, तेरी ही भूल सब।
कर्म अपने करते हैं, अनुकूल और प्रतिकूल सब।।'

'कर्म की प्रधानता की क्या, नहीं तुझको समझ।
कर्म से आनन्द है और, कर्म ही से सूल सब।।'

'यह जगत है वाटिका, करते हैं प्राणी आके काम।
कर्म के अनुसार इनके, कांटे हैं और फूल सब।।'

'जो ठगेगा वह ठगा जायेगा, नि:संदेह आप।
प्रेमी जन ही पाते हैं और प्रेम के बहुमूल सब।।'

'अपनी करनी आप भरनी, पड़ती है संसार में।
अपने घर की आप उठाया, करते ही हैं चूल सब।।'

'किस भ्रम में तू पड़ा, ओरों की बातें छोड़ दे।
काम में लग अपने कर ले, कर्म निज अनुकूल सब।।'

'सतनाम को तू भज, झगड़ों से बच कर रह सदा।
जो नहीं समझा तो पढ़ना लिखना धूल सब।।'

इस शब्द में कर्म की प्रधानता पर बल दिया गया है और कहा है

कि मनुष्य को कोई दूसरा दुख नहीं देता अपितु वह अपने ही किए कर्म से दुखी है जिसका उसे ज्ञान नहीं है। हर प्राणी जो इस संसार में आता है अपने प्रारब्ध कर्म लेकर आता है और इसे इन्हें भोगना पड़ता है। इस कर्म की गति को कोई टाल नहीं सकता चाहे वह कितना ही बड़ा राजा महाराजा हो अथवा ऋषि, मुनि या संत महात्मा हो। जैसा कबीर साहब ने इस शब्द में कहा है–

'कर्म गति टारे नाहिं टरी।
मुनि वशिष्ट से पण्डित ज्ञानी, सोध के लगन धरी।
सीता हरण मरण दशरथ को, वन में विपत परी।।'
'कहां वह फंद कहां वह पारिध, कहां वह मृग चरी।
सीता को हर ले गयो रावण, सोने की लंक जरी।।'
'नीच हाथ हरिचंद बिकाने, बलि पाताल धरी।
कोटि गाय नित पुन्न करत नृप, गिरगिट जोनि परी।।'
'पाण्डव जिनके आप सारथी, तिन पर विपत्त परी।
दुर्योधन को गर्व घटायो, जदु कुल नाश करी।।'
'राहु केतु और भानु चन्द्रमा, विधि संजोग परी।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, होनी होके रही।।'

अत: यदि मनुष्य को यह कर्म गति समझ में आ जाए तो वह कर्म फल को भोगते हुए दुखी नहीं होगा और आगे के लिए अशुभ कर्म करने से बचेगा। महर्षि शिवव्रत लाल जी ने इसी कर्म गति पर एक शब्द में सुन्दर प्रकाश डाला है।

'शब्द'

'सब भोगें बारंबार, अवश्य फल कर्म किए का।
यह सोच समझ चित धार, मर्म जग जन्म जिये का।।'

'सुर नर देवी देव महर्षि और ब्रह्म अवतारा।
अशुभ कर्म के फल से इनको, मिले नहीं छुटकारा।।'

'एक जो कहिए राम महाप्रभु, पुरुषोत्तम मर्यादा।
गुप्त घाट सरजू जल बूड़े, रामायण सम्वादा।।'

'दूजे कहिए कृष्ण विवेकी, सोलह कला के पूरे।
यदुकुल नाश भील की गांसी, भये मान मद चूरे।।'

'तीजे युधिष्ठिर धर्मराज की, अकथ अपार कहानी।
भाई भारजा संग गले हिम, सो सब कोई जानी।।'

'चौथे वशिष्ट महामुनि ज्ञानी, देखा कुल का नाशा।
विश्वामित्र के हाथ पलट गया, ज्ञान योग का पासा।।'

'पंचम दशरथ अवध नरेशा, श्रवण ऋषि को मारा।
पुत्र वियोग प्राण को त्यागा, मिला न राम सहारा।।'

'छठे इन्द्र की करनी समझो, शाप बृहस्पति दीना।
भगमय देवराज की काया, कर्म का फल यह लीना।।'

'चन्द्र कलंकित काम वेग से, जाने सब संसारा।
करम अटल है महाबली है, कोई कोई करे विचारा।।'

'रावण बालि भरत जड़ ज्ञानी, ऋषि के सुत दुर्वासा।
कर्म किया तैसा फल पाया, अंत में भए उदासा।।'

'सुन प्रसंग चित अपना सोधो, सोधो मन कर्म वानी।
शब्द योग कर जन्म बनाओ, संतो की सहदानी।।'

इस शब्द में स्पष्ट लिखा है कि राम कृष्ण जैसे अवतारों, इन्द्र, बृहस्पति, चन्द्रमा जैसे देवताओं तथा बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों को भी अपने-अपने अशुभ कर्मों का फल भोगना पड़ा तो हम साधारण मनुष्यों की तो बात ही क्या है? और जब तक मनुष्य के शुभ व अशुभ कर्मों का

लेखा-जोखा पूरा नहीं हो जाता तब तक वह आवागमन से छूट नहीं सकता है।

इस कर्म के चक्र से बचने का एकमात्र इलाज सतगुरु की शरण है। सतगुरु जीव को सुरत शब्द योग के साधन की विधि बताता है जिससे उसका मन एकाग्र हो जाता है। वह ध्यान से सतगुरु का सत्संग सुनकर उस पर अमल करता है और फिर ज्ञान की अग्नि से अपने सभी जन्म-जन्मान्तरों के शुभ व अशुभ कर्मों को जलाकर भस्म कर देता है। जैसे :

'टेढे जतन को सीधा करदे, युक्ति निराली बतला दे।
थोड़े ही में समझा दे तू, सत मत की पहचान मिले।।'

सतगुरु जो जीवन्मुक्त है उसके वचन व सलाह से यह काम बहुत आसान हो जाता है क्योंकि ऐसे महापुरुष के सत्संग व योग साधन से उसे सही समझ आ जाती है। उसकी बुद्धि विवेकशील हो जाती है और उसे अनुभव ज्ञान हो जाता है। इस अनुभव के साधन से उसे पता चल जाता है कि वह परमात्मा कहीं और नहीं अपितु इस शरीर में ही है। फिर वह अपना जीवन मुक्त अवस्था में रहकर व्यतीत करता है और उसकी स्थिति यह हो जाती है कि -

मन मस्त हुआ, तब क्या बोले। (टेक)

हीरा पायो गांव गठियायो, बार-बार वाको क्यों खोले।
हल्की थी तब चढी तराजू, पूरी भई तब क्यों तोते।।

सुरत क्यारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले।
हंसा पाये मान सरोवर, ताल तलैया क्यों डोले।।

तेरा साहिब है घट माहिं, बाहर नैना क्यों खोले।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, साहेब मिल गए तिल ओले।।

✳✳✳✳

जीवन्मुक्त अवस्था के लिए शरीर, मन व आत्मा की समता

शरीर, मन, आत्मा और सुरत तत्व से बने इस मनुष्य में इन चारों तत्वों का अपना अलग-अलग स्थान व महत्व है। जीवन्मुक्त अवस्था को प्राप्त करने के लिए इन चारों का स्वस्थ होना अत्यन्त आवश्यक है। जैसे मनुष्य का शरीर जो अन्न से बना है उसका भोजन अन्न व प्राणवायु है। यदि उसे उचित भोजन और वायु नहीं मिलेगी तो उसका शरीर अस्वस्थ हो जायेगा। इसलिए शरीर को उचित खान-पान व व्यायाम इत्यादि के द्वारा स्वस्थ रखना चाहिए।

मन एक सूक्ष्म तत्व है। जब तक उसके ऊपर बाहरी प्रभाव व संस्कार नहीं पड़ते तो वह सुन्न अवस्था में होता है और जैसे ही इस पर बाहरी प्रभाव पड़ते हैं तो इसमें तरह-तरह के विचार, भ्रम व शंकाएं उत्पन्न हो जाती हैं। इस मन का भोजन सुन्दर, शुभ विचार, उसकी एकाग्रता व ज्ञान-प्राप्ति है। यदि हमारा मन ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, निन्दा, चिन्ता आदि अनुचित विचारों से मलिन व गंदा है तो वह कभी स्वस्थ नहीं रहेगा और मन के ठीक न रहने से शरीर भी स्वस्थ नहीं रहेगा। अत: मन की तरंगों को सम अवस्था में लाना अत्यन्त आवश्यक है।

मनुष्य शरीर में यह आत्मा प्रकाश स्वरूप है। शरीर व मन की रचना प्रकाश से ही होती है और इस आत्मा का भोजन आनन्द है। इस आनन्द की अवस्था में कोई दुख-सुख नहीं है। और यह आनन्द उसे तब मिलेगा जब उसे अपने मन के रूप का ज्ञान हो जायेगा और जब वह शरीर व मन के भावों से अलग हो ऊपर जायेगा तो वह प्रकाश स्वरूप हो जायेगा। यह प्रकाश ही आनन्द का खजाना है। उस प्रकाश में रहने वाले योगी में जबरदस्त सिद्धि आ जाती है। इसके लिए उसे किसी

अनुभवी आत्मनेष्ठी महापुरुष की संगत व आज्ञा में रहना अनिवार्य है। यदि वह केवल बुद्धि से समझ कर यहां ठहरने की कोशिश करेगा तो वह यहां ठहर नहीं सकेगा और जबरदस्ती करने पर दिमाग का संतुलन बिगड़ने का डर है। यही कारण है कि मनुष्य यहां दुनिया के हर पदार्थ में आनन्द ढूंढता है। परन्तु यह असली आनन्द कहां है? इसका उसे ज्ञान नहीं है। इसके लिए आत्म अनुभव की आवश्यकता है।

सुरत इस मनुष्य शरीर में परमात्मा का एक छोटा सा अंश है जो चेतन स्वरूप है। इस सुरत का भोजन शान्ति है और यह शान्ति मनुष्य को तभी मिल सकती है जब वह अपने आप को जान लेता है कि वह क्या है और कहां से आया है? यह केवल अनुभव से ही जाना जा सकता है।

इस प्रकार इस जीवन्मुक्त अवस्था का अनुभव तभी किया जा सकता है कि जब हमारा शरीर स्वस्थ है, मन का संतुलन ठीक है, आत्मा आनन्दमय है और सुरत शान्ति की स्थिति में है। सत्संग व योग साधन से मन, वचन व कर्म की शुद्धि की जाती है। योग कोई मंजिल नहीं है। 'योगश्च चितवृत्ति निरोध:' अर्थात् योग से चित्त की वृत्ति स्थिर होती है। हमारे मन पर तरह-तरह के बढ़िया व घटिया संस्कार पड़े होते हैं और हम अधिकतर इन विचारों में ही उलझे रहते हैं। मन के रूप का ज्ञान होने पर इन विचारों मे उलझ कर न रहना ही समता है और इसको समता में रखने के लिए किसी समता या मुक्त स्थिति (अवस्था) में रहने वाले जीवित महापुरुष की आवश्यकता है जो जीव की प्रकृति व परिस्थिति के अनुसार उसे उचित मार्गदर्शन करे। ऐसे अनुभवी महापुरुष के सत्संग व आदेश से साधन करके समझ, विवेक, अनुभव व ज्ञान हो जाने पर हम अपने निज रूप का अनुभव कर लेते हैं और फिर जो प्रारब्ध कर्म है उनको जीवन्मुक्त अवस्था में परमात्मा की मौज में रहकर भोगते हैं और अन्त में शरीर छोड़ने पर यह सुरत तत्व अपने परमात्म तत्व जो एक महान

शक्ति है उसी में लीन हो जाता है। यही जीवन्मुक्त अवस्था है अर्थात् जीते जी भी मुक्त और शरीर छोड़ने पर भी मुक्त। यह अवस्था हर मनुष्य प्राप्त कर सकता है परन्तु इसके लिए समस्थिति को प्राप्त करना जरूरी है। मेरी सुरत उस तत्व का अनुभव करते-करते कई बार उसमें लीन हो जाती है जो गहरी नींद जैसी स्थिति है लेकिन फिर वहां से अपने आप उत्थान हो जाता है। अब अंत समय क्या गुजरे ? कह नहीं सकता। जैसे कहा है -

'तपा रे तपा काहे को खफा।
अन्त समय पता नहीं क्या हो मता।।'
'अन्त मता सो गता।'

इस मुक्ति पद तक सुरत की चढाई के लिए संतों ने कई विधियां अपने-अपने अनुभव, संस्कार व योग्यतानुसार बताई है। ये सभी ठीक हैं क्योंकि यह अनुभव का विषय है। संतमत के अनुसार जो अब प्रचलित है उस बारे में संतवाणी का एक शब्द लिखता हूं। आप पढ़ें व समझें-

'शब्द'

'गुरु का ध्यान कर प्यारे, बिना इसके नहीं छुटना।
नाम के रंग में रंग जा, मिले तोहे धाम निज अपना।।'

'गुरु की शरण दृढ कर ले, बिना इस काम नहीं सरना।
लाभ और मान क्यों चाहे, पड़ेगा फिर तुझे देना।।'

'कर्म जो-जो करेगा तू, वही फिर भोगना भरना।
जगत के जाल से ज्यों-त्यों, हटो मर्दानगी करना।।'

'जिन्होंने मार मन डाला, उन्हीं को सूरमा कहना।
बड़ा बैरी यह मन घट में, इसी का जीतना कठिना।।'

'गुरु की प्रीत कर पहले, बहुरि घट शब्द सुनना।
मान दो बात यह मेरी, करे मत कुछ और जतना।।'

'हार जब जाय मन तुझसे, चढ़ा दे सुरत को गगना।
और सब काम जग झूठा, त्याग दे इसी को गहना।।'
कहे फकीर दयाल समझाई, गहो अब नाम की सरना।'

यह इस समय का संत मत का साधन है यानी पहले सत्संग फिर गुरु स्वरूप का ध्यान और उसके बाद नाम का सहारा। सबकी प्रकृति व संस्कार, अलग-अलग होते हैं। इसलिए किसी को जल्दी तो किसी को कुछ समय बाद यह अवस्था हासिल होती है। लेकिन मुझे इस नाम का अनुभव पहले ही दिन गुरु के पास जाते ही उनकी बात पर विश्वास करते ही हो गया। मुझे कुछ करने की जरूरत ही नहीं पड़ी और ऐसी स्थिति है कि-

'सहजे ही धुन होत है, हरदम घट के माहिं।
सुरत शब्द मेला भया, मुंह की हाजत नाहिं।।'

इस निज रूप के अनुभव के लिए यह सार शब्द का योग आवश्यक है। बिना सार शब्द योग के सुरत का मंजिल पर पहुंचना संभव नहीं है। यह मेरा अपना अनुभव है। परम दयाल फकीरचंद जी व कबीर साहब का भी यही अनुभव है। हो सकता है किसी भाई को किसी और विधि से शान्ति मिली हो। अत: इस विषय में मेरा कोई दावा नहीं है।

शब्द

सुरत से देख ले वो देश। (टेक)
देखत-देखत दीखन लागै, मिट गए सकल अन्देशा।।
वहाँ नहीं चन्दा, वहां नहीं सूरज, नहीं पवन प्रवेश।।
नहीं वहां जाप नहीं वहां अजपा, निःअक्षर प्रवेश।।
वहां के गए बाहुड़ नहीं आवै, कोऊ न कहत सन्देश।।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, गहो सतगुरू उपदेश।।

✳✳✳✳

शरणागत अवस्था

यह जीवन्मुक्ति की अवस्था ऐसे ही प्राप्त नहीं हो सकती। इसके लिए हमें अपने इष्ट के प्रति भरोसा रखना होगा और उस भरोसे को कायम रखने के लिए मन में अपने इष्ट के प्रति पूरी आस्था रखनी होगी तभी यह मुक्त अवस्था पाई जा सकती है और यह आस्था, विश्वास व भरोसा तब होगा जब हम अपने आपको इष्ट के प्रति सुपुर्द कर देंगे अर्थात् शरणागत हो जायेंगे। जैसा इस शब्द में लिखा है-

'भरोसा तेरा है, तेरी आस मन में।
लगा रहता हूं, तेरे सुमिरन भजन में।।'

'यही है जतन और यही काम मेरा।
जपा करता हूं रात-दिन नाम तेरा।।'

'तेरी मौज में रहकर, निशदिन सुखी हूं।
न भय है न चिंता, न जग से दुखी हूं।।'

'खुली आंख से तेरा, दर्शन जो पाया।
मिटा सहज में मान, मद मोह माया।।'

'न योगी न साधु न ज्ञानी बना मैं।
न भोगी न असाधु, न ध्यानी बना मैं।।'

'जो था पहले अब भी, वही रूप मेरा।
न व्यापा मुझे, काल का हेरा फेरा।।'

'न जागा न सोया, न सुषुप्ति में आया।
न आशा निराशा के, भय ने सताया।।'

'न दौड़ा न बैठा न लेटा कभी मैं।
न माता-पिता और बेटा कभी मैं।।'

'न ब्रह्म न माया का है द्वन्द्व मुझको।
न उलझा सका, कर्म का फन्द मुझको।।'

'सहज रूप है और, सहज कर्म वाणी।
सहज में सहज की, सहज ही निशानी।।'

'सहस्रदल अनेक और, त्रिकुटी की त्रिपुटी।
दशा द्वैत की सुन्न में भी न प्रकटी।।'

'महासुन्न अद्वैत का, भाव भी छूटा।
भंवर में नहीं, काल माया ने लूटा।।'

'अलख हूं अगम हूं अनामी बना हूँ।
कहूं कैसे कैसा कहां और क्या हूं।।'

'गुरु फकीर दयाल ने आकर चेताया।
मेरा रूप मुझको सहज में लखाया।।'

अब यहां प्रश्न यह है कि भरोसा किसका किया जाए? क्या राम-कृष्ण का? राधास्वामी गुरु का? व्यास या आगरा वालों का? या किसी और गुरु पीर का? नहीं, शब्द के अंत में लिखा है कि गुरु फकीर दयाल ने आकर चेताया, मेरा रूप मुझको सहज में लखाया। यह रूप मनुष्य के अन्दर और बाहर सब जगह है। बस उसका भरोसा करना है। वह हर जगह हाजिर है। जहां भी उसको याद करो, वह रक्षक है।

बाहर के गुरु का यह बड़प्पन है कि वह जीव को उसकी प्रकृति व संस्कार के अनुसार विधि बताकर उसका निज रूप दिखा देता है। अब आप समझ गए होंगे कि किसका भरोसा और किसकी आश? तो इस बात का विश्वास कैसे आया?

'गुरु फकीर दयाल ने आकर चेताया।
मेरा रूप मुझको सहज में लखाया।।'

उसके बाद यह अनुभव हो जाता है कि यह सब खेल परमात्मा का है और वही यह लीला कर रहा है। परमात्मा बेअंत है। वह एक बहुत बड़ी शक्ति है। यह सब कुछ उसी से होता है। गुरु नानक देव जी ने कहा है-

'सगरी सामग्री तुमरी सूत्रधारी।
तुम से होये सो आज्ञाकारी।।'

'दृष्टि ऊंची करे जो प्राणी, सार समझ में आये।
सार पाये शरणागत आवे, आवागमन नशावे।।'

जब मनुष्य की सत्संग और योग साधन से बुद्धि निश्चयात्मक हो जाती है और सुरत शब्द योग से उसे अपने निज रूप का सहज अनुभव हो जाता है तो उसे ज्ञान हो जाता है कि वह एक चेतन का बुलबुला है जो उस परम तत्व की हिलोर से बना है। बस इस सार या रहस्य की समझ आ जाने पर वह सब योग साधन छोड़कर शरणागत हो जाता है।

अब रही परमात्मा की बात तो यह भी अनुभव में आ जाता है कि इसका कोई किनारा ही नहीं है। मैं एक पानी का बुलबुला हूं तो वह एक महासागर है। इसका ज्ञान भी सतगुरु अपने सत्संग में देता है। नीचे लिखे शब्द से इसे समझें –

'नमो सतगुरुं सच्चिदानन्द रूपम्।
नमो अद्भुतम् अद्वितीयम् अनुपम्।।'

'नहीं रूप कोई है सब रूप तेरे।
तेरी सब ही प्रजा और भूप तेरे।।'

'धरा संत अवतार जग को चेताया।
दुःखी दीन को अंग अपने लगाया।।'

'दिया संग सत का मिला सत का जीवन।
तेरे नाम पर सीस तन मन है अर्पण।।'

'झुके फकीर दयाला चरण हंसते-हंसते।
तुझे कहते हैं सब नमस्ते नमस्ते।।'

अब इस कलयुग में संत रूप में वह परमात्मा आकर मानव को सत्संग व साधन से निज रूप का अनुभव कराकर जीवन्मुक्त कर देता है। मनुष्य को सुख शान्ति के लिए ज्ञान की आवश्यकता है। जो किसी मनुष्य द्वारा ही दिया जायेगा। वास्तव में गुरु नाम ज्ञान का है।

✳✳✳✳

सिद्धि-शक्ति व चमत्कार

मनुष्य जब किसी देवी-देवता या गुरु-पीर में से किसी एक को इष्ट मानकर उसका ध्यान करता है तो इससे उसमें सिद्धि-शक्ति आ जाती है। जैसे कहा है 'एक ही साधे सब सधे, सब साधे सब जाय।' परन्तु इस साधन से वह सदा के लिए निज घर नहीं जा सकता है और माया जाल में फंस जाता है। जो लोग इच्छा या कोई चाह लेकर दर्शन करने आते हैं तो उनका काम उनके आस व विश्वास के कारण हो जाता है और साधु संत मान-बड़ाई के जाल में फंस कर आनन्द व खुशी लेते रहते हैं तथा लोग उनकी जो वे चाहते हैं सेवा करते रहते हैं।

पाकिस्तान में एक कालुशाह नाम के महात्मा थे। बाद में उनका नाम शाह काकु पड़ गया था। शहर के व दूर-दूर के लोग कोई इच्छा लेकर उनके दर्शन करने आते थे क्योंकि बड़े-छोटे सभी के लिए साधु-फकीरों का दरबार खुला होता है। एक दिन उसी शहर की एक वैश्या भी शाह काकु के यहां मुजरा करने गई। उस वेश्या ने मार्फत की एक गजल सुनाई। फकीर बहुत खुश हुआ और बोला कि मांग तू क्या चाहती है? वेश्या ने हाथ जोड़कर कहा कि सांई, आपका दिया सब कुछ है किसी चीज की कोई कमी नहीं है। फिर फकीर बोला कि कुछ तो मांग। वेश्या ने हाथ जोड़कर फिर वही बात दोहराई और कहा कि बस आपका आशीर्वाद लेने आई हूं। वेश्या धनवान थी और समझ वाली थी। फकीर के पुनः दोहराने पर बोली कि सांई, अगर कुछ देना ही चाहते हो तो मेरे भाग्य में यदि दो रोटी हैं तो उनको या तो तीन कर दो या एक कर दो।

यह बात सुनकर फकीर को होश आ गया और वह रोज सुबह उठकर अपना मुंह स्याही से काला कर लेता और जो लोग आशीर्वाद लेने आते उनको यही कहता कि-

'खुदा के हुक्म वाला।
काकुशाह का मुंह काला।।'

कहने का भाव यह है कि कोई साधु, संत, देवता किसी को कुछ नहीं दे सकता है। मनुष्य यहां पर अपना प्रारब्ध कर्म लेकर आता है और उसी के अनुसार उसको लाभ-हानि, दुख-सुख मिलता है। साधु, संत के मुंह से वही बात निकलती है, जो उसके भाग्य में पहले से ही लिखी होती है। मेरे साथ ऐसी घटनाएं रोज घटती रहती हैं। मेरे विश्वासी आकर मुझे बताते हैं कि आपने जो उस दिन कहा था या आशीर्वाद दिया था- वह वैसे ही हो गया है और मुझे इस बात का कुछ पता नहीं होता।

इसका रहस्य यह है कि मेरी सुरत अधिकतर उस परम तत्व से जुड़ी रहती है और मेरे मुंह से वह होने वाली बात सहज में ही निकल जाती है जो उसके भाग्य में पहले से ही लिखी होती है। अगर वास्तव में कोई साधु है तो वह वही बात कहता है जो पहले लिखी होती है। यही बात काकुशाह और वेश्या की है जो ठीक है। वह ज्ञानी थी और किसी अशुभ कर्म के कारण वेश्या का काम उसके प्रारब्ध में था। भाग्य के कारण ही मनुष्य कोई इच्छा लेकर साधु-संत के दरबार में जाता है, अगर भाग्य में नहीं है तो वह साधु-संत के दर्शन करने जायेगा ही नहीं और यदि जायेगा तो नया कर्म बन जायेगा परन्तु उस समय उसे कुछ नहीं मिलेगा। अब नया कर्म बन रहा है इसका फल समय आने पर मिलेगा। वास्तव में यह कर्म की बात बहुत गहन है जिसे आम मनुष्य सत्संग में ही समझ सकता है और विद्वान् ध्यान से पुस्तक पढ़कर समझ सकता है।

अब रही बात चमत्कार की। ये चमत्कार भी मनुष्य के किसी इष्ट के प्रति प्रेम, श्रद्धा व आस-विश्वास से ही घटित होते है। जब मनुष्य का अपने इष्ट के प्रति जिसे वह पूर्ण मानता है, प्रेम होता है तो प्रेमवश भाव विभोर होने पर उसका मन एकाग्र हो जाता है और वह इष्ट का रूप प्रकट होकर उसकी मनचाही इच्छा को पूरी कर देता है। इसी प्रकार किसी कारणवश मन के भयभीत होने पर जब उसे कोई अन्य सहारा नजर नहीं आता तो वह सच्चे मन से अपने इष्ट को याद करता है और वह

इष्ट का रूप प्रकट होकर उसकी मदद कर देता है। तो बात स्पष्ट है कि जीव के प्रेम, आस्था, विश्वास व भय से मन की एकाग्रता हो जाने पर जो सुरत तत्व है वह मन पर आकर जिस इष्ट में उसका विश्वास होता है वही रूप बनाकर उसकी सहायता जो वह चाहता है कर देता है। यदि राम, कृष्ण के रूप में विश्वास है तो राम, कृष्ण का रूप प्रकट होगा, यदि देवी-देवता में विश्वास है तो देवी-देवता का रूप प्रकट होगा और यदि किसी जीवित या गए हुए गुरु-पीर में विश्वास है तो वह रूप प्रकट होकर मनुष्य की मदद करता है। लेकिन ये चमत्कार भी उन्हीं के साथ घटित होते हैं जिनके भाग्य में यह लिखा हो, नहीं तो उनका विश्वास बनेगा ही नहीं।

अब यह रहस्य खोलने के लिए न तो राम, कृष्ण आयेंगे न ही देवी-देवता व गये हुए गुरु-पीर आयेंगे और न ही अब जो हाजिर गुरु-पीर जो सत्संगों व टेलिविजनों में ज्ञान देते हैं, बता रहे हैं क्योंकि वे गुरुवाई व आश्रमों के बन्धन में बन्धे हुए हैं। अगर वो यह सच्चाई बता देंगे तो उन्हें इतना मान-सम्मान व धन नहीं मिलेगा और आश्रमों की यह भीड़ कम हो जायेगी। इसलिए वो इस रहस्य को आपको नहीं बता सकते।

इसलिए प्यारे पाठको। मैं गुरु आज्ञा से इस रहस्य को खोलकर बता रहा हूं कि मेरा रूप जगह-जगह सत्संगियों में प्रकट होकर उनके सब काम कर देता है और मैं किसी के अन्दर प्रकट होने नहीं जाता हूं, तो बात साफ है कि वह रूप बनाने वाली शक्ति मनुष्य के अन्दर ही स्थित है जो उनके विश्वास के अनुसार प्रकट होकर उनकी सहायता कर देती है। यह शक्ति आपका ही निज रूप सुरत तत्व है जो परमात्मा का छोटा सा अंश है। लेकिन मनुष्य इस भ्रम में है कि वास्तव में राम आए, कृष्ण आए, देवी आई या गुरू जी आए जबकि सच्चाई यह है कि बाहर से कुछ नहीं आता है। पहले भी तुलसीदास जी ने इस बात को अपने रामचरित मानस में लिखा है -

जिसकी रही भावना जैसी,
प्रभु मूरत देखी तिन जैसी।।

अत: मेरे योग साधन का यह अनुभव है कि परमात्मा एक महान् शक्ति है और उसकी सत्ता कण-कण में काम कर रही है। वह मनुष्य के अन्दर अंश रूप में मौजूद है और मनुष्य जीवन के सब खेल वही कर रहा है, परन्तु अज्ञानता के कारण मनुष्य की बुद्धि उसका खेल समझ नहीं सकती। उसकी लीला अपरम्पार है। जैसे इस शब्द में कहा है -

ढूँढ मुझको अपने मन में, मैं तो तेरे पास हूँ।
मैं न काशी हूँ न मथुरा, न मैं गिरि कैलाश हूँ।।

तू हुआ मेरा तो मैं भी, देख तेरा बन गया।
कर भरोसा मेरा मैं ही, तेरी सच्ची आस हूँ।।

तेरे भीतर मेरी बैठक, आंख से ले देख अब।
मैं नहीं पृथ्वी की मूरत, मैं नहीं आकाश हूँ।।

किस भरम में है पड़ा, निरभ्रान्त चित से शान्त हो।
आप मैं हूँ योग युक्ति, आप शब्द अभ्यास हूँ।।

सतगुरू का नाम ले, और नाम में विश्राम ले।
सुख ले आनन्द मुझसे, मैं ही सुख की रास हूँ।।

लेकिन यह ज्ञान सतगुरू ही जीव को दे सकता है। जैसे कबीर साहब ने इस निम्न शब्द में लिखा है :

अब मैं भूला रे भाई, मेरे सतगुरू जुगत लखाई।।

क्रिया कर्म आचार मैं छोड़ा, छोड़ा तीर्थ का नहाना।
सगरी दुनिया भई सयानी, मैं ही एक बौराना।।

ना मैं जानूँ सेव बंदगी, ना मैं घंट बजाई।
ना मैं मूरत धरी सिंहासन, ना मैं पुहुप चढ़ाई।।

जो यह मूरत मुख से बोलै कर अस्नान न्हवाई।
पांच टका हौं देत ठठेरे, एकहिं हों लै आई।।

ना हरि रीझै जप तप कीन्हें, ना काया के जारे।
ना हरि रीझै धोती छाड़े, ना पांचों के मारे।।

दया राखि धरम को पालै, जग से रहै उदासी।
अपना सा जिव सबका जानै, ताहि मिलै अविनाशी।।

सहै कुसबद बाद को त्यागै, छाड़ै गर्व गुमाना।
सतनाम ताही को मिलि है, कहै कबीर सुजाना।।

इस शब्द में कबीर साहब ने बड़े सीधे शब्दों में बता दिया है कि वह अविनाशी सतपुरुष न जप, तप में है न अपना वेश बदलने में है और न ही किसी मन्दिर या मूर्ति में है अपितु वह मनुष्य के अन्दर ही विराजमान है और उसे प्राप्त करने का तरीका पिछली चार पंक्तियों में बताया है कि उस परमात्मा को पाने के लिए अपने हृदय में दया का भाव रखो, किसी को दु:ख मत दो और वाद-विवाद व झगड़ों से बच कर रहो। अगर कोई कटु वचन बोल दे तो उसे सहन करो और किसी तरह का कोई अभिमान मत करो। इस प्रकार के गुणों को अपने अन्दर लाकर अपने कर्तव्य कर्म को करते हुए उस परमतत्व में लीन रहो। अर्थात् दुनिया के सब काम करते हुए वैचारिक तौर पर मुक्त रहो। सन्तों ने समय-समय पर यहां आकर मनुष्यों को चेताया है कि यह जीवन्मुक्त अवस्था कब और कैसे प्राप्त की जा सकती है। जैसा कि इस शब्द में लिखा है :-

शब्द

हंसा भाई हंस रूप था, जब तू आया।
अपना स्वरूप भ्रम में भूला, जब तू जीव कहाया।।

कर्मों के बन्धन में फंस के, असली तत्त्व भुलाया।
कांचे तत्त्व में आण मिला तू, मिली माटी की काया।।

अष्टांग योग की करी तपस्या, नाहक शरीर सुखाया।
जब लग मिला ना गुरू पारखी, जन्म-जन्म दुख पाया।।

जो भी मिला, मिला खुद गरजी, माया जाल फैलाया।
अपना स्वार्थ सिद्ध करने को, झूठा लालच लाया।।

साहेब कबीर मिले गुरू पूरे, जिन निज स्वरूप लखाया।
धर्मदास ने आपा खोजा, छोड़ दिया जग दावा।।

✳✳✳✳

चेतावनी

सत्संग करत बहुत दिन बीते।
अब तो छोड़ पुरानी बान।।

कब लग करो कुटिलता गुरू से।
अब तो लो गुरू को पहचान।।

गुरू को तुम मानुष मन जानो।
वे हैं सतपुरूष की जान।।

जैसे तैसे मन समझाओ।
धर प्रतीत करो उन ध्यान।।

दया मेहर से वचन सुनावें।
वे हैं पूर्ण पुरूष अनाम।।

धरी देह मानुष की गुरू ने।
ज्यों त्यों तेरा करें कल्याण।।

सेवा कर पूजा कर उनकी।
उन ही को गुरू नानक जान।।

वही कबीर वही सतनामा।
सब सन्तन को वही पिछान।।

तेरा काम उन्हीं से होगा।
मत भटकै तू तज अभिमान।।

चूके मत अवसर अब पाया।
बढ़कर इन से कोई न मिलान।।

जो अब के तू गुरू से चूका।
तू भरमेगा चारों खान।।

फिर ऐसे गुरू मिले ना कब ही।
मान मान तू अब ही मान।।

पढ़-पढ़ पोथी गा-गा साखी।
क्यों मन में तू धरता मान।।

इसी मान से ख्वार किया है।
यही मान अब करता हान।।

ता ते प्यारे कहूं बुझाई।
यह बेपरवाही भली न जान।।

जल्दी करो कपट करो छोड़ो।
श्रद्धा भाव बढ़ाओ आन।।

इतने पर मन कहा न माने।
तो फिर अपनी तू ही जान।।

सिर पर तेरे हुकम काल का।
ताते मन तेरा नहीं मान।।

लगा रहेगा संग में गुरू के।
सहज-सहज शायद मन मान।।

एक बात जानी हम भाई।
है तू बढ़का बेईमान।।

सतगुरू सन्त कहे समझाई।
ऐसे जीव होय हैरान।।

इस शब्द में सतगुरू ने जीव को चेताया है कि भाई। जो कुछ है, वह गुरू है और जो कुछ मिलना है, गुरू से मिलना है लेकिन गुरू को अगर मनुष्य मानता रहेगा तो कुछ नहीं मिलना क्योंकि गुरू स्वयं शब्द स्वरूपी है। इसलिए अपनी मान बड़ाई को छोड़कर जो गुरू कहते हैं उनके वचन मानकर अपना कल्याण कर और गुरू को परमात्मा का स्वरूप मानकर गुरूमुखी बन मनमुखी नहीं। मनमुखी वह होता है जो अपने मन का गुलाम होता है और जो मन कहता है वही करता है। ऐसा मनमुखी संसार में दुखी होता है और काल के दायरे से बाहर नहीं निकल पाता। यह मन गुरू का संग करने व उनके वचन का पालन करने से सहज ही वश में आ जाता है और कल्याण के रास्ते पर चल पड़ता है। इसलिए जीवित अनुभवी गुरू का संग व सत्संग अनिवार्य है। जैसे कहा है -

'सतगुरू चीन्हों री जग में, दुर्लभ रत्न यही।'

सतगुरू जीव को परमार्थ का रास्ता बताते हुए उसे कैसे नाम भक्ति का उपदेश देता है। यह राधास्वामी (सन्त) वाणी में इस प्रकार लिखा हुआ है -

चेतो मेरे प्यारे, तेरे भले की कहूं।
गुरू तो पूरा ढूंढ, तेरे भले की कहूँ।

शब्द रता गुरू देख, तेरे भले की कहूं।
तिस गुरू सेवा धार, तेरे भले की कहूं।
गुरू चरणामृत पी, तेरे भले की कहूं।
गुरू प्रसादी खाव, तेरे भले की कहूं।
गुरू आरत कर ले, तेरे भले की कहूं।
तन-मन भेंट चढ़ा, तेरे भले की कहूं।
वचन गुरू के मान, तेरे भले की कहूं।
गुरू को कर प्रसन्न, तेरे भले की कहूं।
नित भजन कर नेम, तेरे भले की कहूं।
जीव दया तू पाल, तेरे भले की कहूं।
दुख न दे तू काय, तेरे भले की कहूं।
वचन तान मत मार, तेरे भले की कहूं।
कड़वा वचन मत बोल, तेरे भले की कहूं।
सब को सुख पहुंचाव, तेरे भले की कहूं।
नाम अमी रस पी, तेरे भले की कहूं।
शील क्षमा चित राख, तेरे भले की कहूं।
सन्तोष विवेक विचार, तेरे भले की कहूं।
काम क्रोध को त्याग, तेरे भले की कहूं।
लोभ मोह को टार, तेरे भले की कहूं।
दीन गरीबी धार, तेरे भले की कहूं।
सन्तों से कर प्रीत, तेरे भले की कहूं।
भोजन बहुत न जीम, तेरे भले की कहूं।
सत्संग में तू जाग, तेरे भले की कहूं।
मान-बड़ाई छोड़, तेरे भले की कहूं।
भोग-वासना जार, तेरे भले की कहूं।
सम दम हिरदे धार, तेरे भले की कहूं।
वैराग भक्ति न छोड़, तेरे भले की कहूं।

गुरू स्वरूप धर ध्यान, तेरे भले की कहूं।
गुरू ही का जप नाम, तेरे भले की कहूं।
गुरू अस्तुत कर नित, तेरे भले की कहूं।
गुरू से प्रेम बढ़ाव, तेरे भले की कहूं।
तीर्थ मूरत भरम, तेरे भले की कहूं।
जात अभिमान विसार, तेरे भले की कहूं।
पिछलों की तज टेक, तेरे भले की कहूं।
वक्त गुरू का मान, तेरे भले की कहूं।
तीर्थ गुरू के चरण, तेरे भले की कहूं।
गुरू की सेवा व्रत, तेरे भले की कहूं।
विद्या गुरू उपदेश, तेरे भले की कहूं।
और विद्या पाखण्ड, तेरे भले की कहूं।
लीक पुरानी छोड़, तेरे भले की कहूं।
जो गुरू कहें सो मान, तेरे भले की कहूं।
मार्ग ज्ञान न धार, तेरे भले की कहूं।
भक्ति पंथ सम्हार, तेरे भले की कहूं।
सुरत शब्द मत ले, तेरे भले की कहूं।
सुरत चढ़ा नभ माहिं, तेरे भले की कहूं।
गगन त्रिकुटी जाव, तेरे भले की कहूं।
दसवें द्वार समाव, तेरे भले की कहूं।
भंवर गुफा चढ़ आव, तेरे भले की कहूं।
सतलोक हंस जाव, तेरे भले की कहूं।
अलख अगम को पाव, तेरे भले की कहूं।
सतनाम को ध्याव, तेरे भले की कहूं।
भटक अटक सब छोड़, तेरे भले की कहूं।
टेक पक्ष गुरू बांध, तेरे भले की कहूं।

यह उपदेश पढ़े-लिखे, बुद्धिमान् व विद्वान् पुरूषों के लिए है जो घर बैठे इस नाम भक्ति के उपदेश को समझकर अपना जीवन सुन्दर बना सकते हैं और जो बहन-भाई इसे नहीं समझ सकते, वे गुरू के सत्संग में जाकर कुछ दिन तक इस बात को समझकर, अपनी रहनी बनाकर अपने जीवन को सुख-शान्ति का बनाएं और फिर गुरू जी से नाम की विधि सीखकर सुबह-शाम थोड़ा-थोड़ा साधन करके उसका अनुभव करें। लेकिन यहां यह बात समझनी अनिवार्य है कि यह साधन सभी का एक जैसा नहीं हो सकता क्योंकि सबकी प्रकृति, स्वभाव व परिस्थिति अलग-अलग है और यह बात इस उपदेश में भी कही है कि ''मार्ग ज्ञान न धार, तेरे भले की कहूं, भक्ति पंथ सम्हार, तेरे भले की कहूं।'' अत: अनुभवी पुरूष मनुष्य की योग्यता व हालात को देखकर वैसी ही बात उसे बताता है, मैं जो ये पुस्तकें पढ़ाकर ज्ञान देता हूँ, वह केवल बुद्धिमान् व समझदार मनुष्यों के लिए हैं। यह बुद्धियोग है। इन पुस्तकों को पढ़ने वाले सज्जनों के चार योग सिद्ध हो जाते हैं - 1. बुद्धियोग 2. ध्यान योग 3. ज्ञान योग 4. भक्ति योग। शरीर, मन और आत्मा की भक्ति से आगे जो सुरत शब्द की भक्ति है वह सुरत को मंजिल पर ले जाकर परमात्मा में मिला देती है।

यह जो नाम-उपदेश है यह उस सुरत शब्द की भक्ति के लिए जीव को तैयार करने की बात है ताकि पहले उसका आचरण व रहनी बने और फिर वह आगे की मंजिल सुरत-शब्द की भक्ति के योग्य हो। लेकिन यह नियम भी सब पर लागू नहीं होता, इस बात को सतगुरू बेहतर जानता है। मैंने अपने सुरत-शब्द योग के अनुभव के आधार पर यह बात अपनी पुस्तकों में साफ लिखी हुई है, जिसे अध्यात्म ज्ञान के जिज्ञासु व्यक्ति पढ़कर समझ सकते हैं। लेकिन यह मार्ग करनी का है केवल कथनी व पढ़ने मात्र से यह योग नहीं

सधेगा। जैसे -

कथनी बदनी छोड़ कर, करनी सों चित लाय।
नर को नीर पिलाये बिन, कबहूँ प्यास न जाय।।

कथनी थोथी जगत में, करनी उत्तम सार।
कहैं कबीर करनी किये, उतरै भव जल पार।।

करनी बिन कथनी कथे, गुरू पद लहै न सोच।
बातों के पकवान से, धापा नाहीं कोय।।

करनी कारज में नहीं, कथनी कथे अपार।
इन बातों क्यों पाइये, साहिब का दीदार।।

✳✳✳✳

सन्तमत

सन्तमत मनुष्य जीवन की सब समस्याओं को सत्संग व योग विधि से सुलझाने का पंथ है। इसमें जाति-पाति के सब बन्धन तोड़कर मनुष्य मात्र को ज्ञान दिया जाता है। यह मत साधन व अभ्यास से अन्तर में अनुभव करने की विधि सिखाता है। वास्तव में यह करनी का मार्ग है। यह सुरत शब्द योग सन्तमत की देन है जिसमें मनुष्य सादा जीवन जीते हुए अपनी आजीविका कमाते हुए इस सुरत तत्व से अपने निज रूप को जान सकता है। इस सन्तमत में सतगुरू सत्संग व सतज्ञान इन तीनों का महत्वपूर्ण स्थान है।

इस सन्त मत में साधक के लिए ध्यान धारणा की विधि बताई जाती है और इस ध्यान धारणा की विधि में बाहरी गुरू की महानता यह है कि वह जीव को चेताता है, उसके भ्रम का पर्दा हटाता है और धर्म के रहस्य को खोल कर सच्चा ज्ञान देकर उसका सही मार्ग दर्शन करता है। वह जीव को बताता है कि नाम का सुमिरन केवल गुरू द्वारा बताए गए मन्त्र को रटना ही नहीं है अपितु गुरू के वचन पर विश्वास करना व उसकी सलाह को मानना ही सच्चा सुमिरन है। और सुमिरन से जो उसके अन्दर अपने इष्ट का रूप प्रकट होता है जिसे जीव सच मान बैठता है वह सही नहीं है क्योंकि यह रूप तो उसके मन की आस्था से निर्मित है। वास्तविक गुरू तो इससे आगे हैं। इस प्रकार सतगुरू सत्संग में अपने वचनों से जीव को सब प्रकार के भ्रम, कर्म व संस्कारों के बंधन से मुक्त कर योग साधन के द्वारा उसके निज रूप का अनुभव करा देता है और यही सबसे उत्तम ज्ञान है जिसके बिना मुक्ति संभव नहीं।

सन्त मत में जीवित गुरू स्वरूप का ध्यान बताया जाता है और जब गुरू का ध्यान करते-करते वह गुरू रूप जीव के अन्दर प्रकट हो

जाता है तो उसका मन ठहर जाता है, अर्थात् मन में एकाग्रता आ जाती है और इस मन की एकाग्रता से उसे आनन्द व खुशी प्राप्त होती है और उसकी इच्छा शक्ति बढ़ जाती है। वह जो भी इच्छा करता है उसमें उसे सफलता मिलती है और उसमें सिद्धि शक्ति आ जाती है, जिससे उसको बहुत मान-सम्मान प्राप्त होता है। परन्तु शान्ति की मंजिल अभी उसके लिए दूर है।

शान्ति तो अन्तर के साधन में राम-नाम को सुनने से ही आ सकती है, जिसे सन्त मत में भजन का नाम दिया गया है। अन्तर में सुनने वाले इस राम नाम को ही सार शब्द, अनहद नाद या शब्द ब्रह्म कहा है। वैसे साधना में अलग-अलग स्थानों के अलग-अलग शब्द होते हैं, जिन्हें अनुभव करके अपने मार्ग दर्शन करने वाले गुरू को ही बतलाने चाहिए। गुरू केवल रास्ता आसान करता है। यह जो योग के त्रिकुटी, सुन्न, महासुन्न, सतलोक आदि स्थानों का वर्णन पुस्तकों में आता है, इन सबका अनुभव मनुष्य अपने अन्तर में करे, यह आवश्यक नहीं है। बात समझ में आने पर मनुष्य सीधा ऊपर अलख, अगम और अनाम के स्थानों पर जाकर सार शब्द का अनुभव कर सकता है। मुख्य उद्देश्य केवल सुरत को शब्द में लगाना है। यह अलख, अगम और अनामी साधन सन्तों के है जो निजरूप का अनुभव करा कर मनुष्य को जीवन्मुक्त अवस्था में ले आता है और फिर मनुष्य हमेशा के लिए सुख-दुख, चिन्ता, फिक्र आदि से रहित होकर अपना जीवन खेल की तरह व्यतीत करता है। जैसा कि इस शब्द में कहा है -

अजर अमर एक नाम है, सुमरण जो आवै।
बिन मुखड़े के जप करे, नहीं जीभ डुलावै।।

उलट सुरत ऊपर करे, नैनन दरसावै।
जाओ हंस पश्चिम दिशा, खिड़की खुलवाओ।।

त्रिवेणी के घाट पर, जहां हंसा नहावो।
पानी पवन की गम नहीं, वो लोक मजांरा।।

ताही बीच एक रूप है, बाको ध्यान लगाओ।।
जमी असमान वहां नहीं, वो अजर कहावै।
कहै कबीर कोई सन्त जन, उस लोक में जावै।।

लेकिन देखने में यह आता है कि इस संसार में अधिकतर दुखी, अशान्त व भ्रमित प्राणी ही साधु सन्तों के पास आते हैं। मुक्ति के इच्छुक व्यक्ति बहुत कम है। आज जगह-जगह आश्रमों में जो भीड़ दिखाई देती है उसका कारण यह है कि लोग देखा-देखी भेड़ चाल में आकर नाम ले लेते हैं और पूरी उम्र कोरे के कोरे रह जाते हैं। वास्तव में यह सन्तमत नहीं है। जीव निबल, अबल, अज्ञानी है। वह दुनिया में तरह-तरह के शारीरिक व मानसिक दुखों से परेशान व चिन्तित है और उसे दिया जा रहा है सदा अमर होने वाला नाम। अत: इन सत्संगियों को उस सत्संग की आवश्यकता है जिसमें उनके दुख व उसके कारण को जानकर उसका सही इलाज बताया जाए। सभी को एक ही लाठी से हांकना ठीक नहीं क्योंकि हर मनुष्य की प्रकृति, स्थिति व हालात अलग-अलग है। केवल चार बात अध्यात्म ज्ञान की रट लेना और पिछले महापुरुषों के अनुभव व चमत्कार बताना सत्संग नहीं है। कथा अपनी जगह ठीक है, परन्तु देखना यह है कि जो संगत बैठी है वह क्या विचार-भाव लेकर सत्संग में आई है।

गुरू नाम ज्ञान का है। केवल शरीर की वेश-भूषा बदल लेने से कोई गुरू नहीं बन जाता है, गुरू वह है जो आज के दुखी मनुष्य को उसके दुख व कमी का कारण जानकर उसकी पूर्ति करने का ढंग बताता है।

मेरा सत्संग देने का यह तरीका है कि जब मैं सत्संग शुरू करता हूँ तो मेरे सामने उपस्थित सज्जनों के विचार मेरे मन पर पड़ते हैं और मेरे

मुंह से सहज ही वह बात निकल जाती है जो उन सत्संगियों की समस्या होती है, इस प्रकार मैं उनकी तकलीफों के कारण व उपाय बताता रहता हूँ और मुझे कुछ पता नहीं होता कि किस सज्जन के यह विचार है? इसका कारण यह है कि मैं अधिकतर उस तत्व से जुड़ा रहता हूँ। अत: सत्संग में आने वालों की रेडियेशन जब मुझ पर पड़ती है तो मेरे मुंह से सहज ही यह बात निकल जाती है जो उनके दुख तकलीफों व उपाय से सम्बन्धित होती है। यही कारण है कि सत्संग के पश्चात् जब मैं उनसे प्रश्न पूछता हूँ तो उनका कोई प्रश्न ही नहीं होता। हां जो कोई मेरी बात को ध्यान से न सुने उनकी बात अलग है।

और जिन लोगों के जीवन में कोई अभाव नहीं है यानी जिनकी दुनिया बनी हुई है और जो ज्ञान-प्राप्ति के जिज्ञासु है तो उन्हें सतगुरू के सत्संग व योग साधना से लाभ उठाना चाहिए। उनके लिए यह निम्न शब्द है :

गुरू कहे खोलकर भाई, लग शब्द अनहद भाई। (टेक)

बिन शब्द उपाय न दूजा, काया का छूटे न कूजा।
घर में घर गुरू दिखलावे, धुन पांच शब्द बतलावै।।

धुन में अब सुरत लगाओ, इस घर से उस घर जाओ।
वह घर है अगम अपारा, दसवें के पार निहारा।।

दस द्वार घट चढ़ खेलो, सत शब्द अधर पे तोलो।
बिन मेहर गुरू नहीं पावे, बिन शब्द हाथ नहीं आवे।।

सुरत खींच चढ़ाओ गगनी, धुन शब्द सुनो यह करनी।
मन चंचल थिर न रहावे, चित निर्मल कस होय आवे।।

सुरत शब्द कमाई करना, सब जतन दूर अब धरना।
निश्चय दृढ़ इस पर धरना, आलस कर कभी न फिरना।।

यह सार-सार सब गाया, सन्तन मत भाव सुनाया।
सतगुरू यह भेद लखाया, सुन मान सार समझाया।।

इस प्रकार यह सन्तमत अनुभव का मार्ग है, कथनी का नहीं। जैसे कहा है :

'सुरत शब्द दोऊ अनुभव रूपा।
तू तो पड़ा भ्रम के कूपा।।'
'कथनी तज करनी करे, तब पावे कुछ सार।'

शब्द

साधो शब्द चीन्हे सोई ज्ञानी। (टेक)
गावत गीत बजाने ताली, दुनिया फिरे भूलानी।
खोटा दाम बांध कर गांठी, खोजै वस्तु हैरानी।।
पोथी बांध बगल में दाबें, ताकै वस्तु बिरानी।।
आठो पहर लोभ में भूलै, मोह चलै अगवानी।
ये सब भूत प्रेत होय धावै, अगला जन्म नसानी।।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, ये पद है निरबानी।
हंस हमारे शब्द महरमी, सो परखे निज बानी।।

और यह अनुभव केवल सन्त सतगुरू वक्त ही करा सकता है। 'नाम रहे सतगुरू आधीना।'

और ऐसे सतगुरू या ज्ञानी की रहनी ऐसी होती है। जैसे ब्रह्मनन्द जी ने कहा है :

नारायण जिनके हृदय में, सो कछु कर्म करे न करे रे।
नांव मिलि जिनको जल माहिं, बाहों से नीर तरे न तरे रे।।
सूरज को प्रकाश भयो तब दीप की ज्योत जरे न जरे रे।
पारस मणि जिनके घर माहिं सो धन सींच धरे न धरे रे।।

अर्थात् ज्ञानी बाहरी कर्मकाण्ड कुछ नहीं करता क्योंकि वह हर समय परम तत्व से जुड़ा रहता है और उस परम तत्व के गुण उसमें सहज में ही समाएं रहते हैं। वास्तव में ऐसा ज्ञानी परमतत्व का ही दूसरा अंश रूप है। जिस प्रकार सूर्य निकलने पर दीपक की आवश्यकता नहीं रहती उसी प्रकार उसे कुछ करने की जरूरत नहीं पड़ती। वह उसकी रजा में राजी रहता है। जैसे –

लग्न बिना, जागे ना नर कोई।
बिना लग्न की प्रीत बावरे, ओस नीर ज्यो धोई।
हम तो रहते राम भरोसे, रजां करै सो होई।।
बिन कृपा सतगुरु नहीं पावै, लाख जतन करो कोई।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, गुरू बिन मुक्ति ना होई।।

✳✳✳✳

साध-सन्त महिमा

हमारे भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही ऋषि, मुनि व साधु-सन्तों का सम्मान होता रहा है। बड़े-बड़े, राजा-महाराजा इन साधु-सन्तों का आदर-सत्कार व सम्मान करते आए हैं। हां आज इस बुद्धि योग में धर्म में छली, कपटी व लुटेरे साधु-सन्तों के आने से लोगों का इनके प्रति विश्वास कम होता जा रहा है। लेकिन फिर भी सच्चे, अनुभवी, महापुरूषों से यह पृथ्वी खाली नहीं है। आज के युग में मेरे परम पूजीनय गुरू पण्डित फकीरचन्द जी ऐसे परम सन्त हुए हैं, जिन्होंने धर्म के गुप्त रहस्य को खोलकर बड़े सरल शब्दों में अपनी पुस्तकों व सत्संगों में बताया है। इसका यह अर्थ नहीं है कि और सन्त नहीं हुए हैं। सारे ही महापुरूष धन्य है जो मानवता को सुखी जीवन व मुक्त पद के लिए मार्ग दर्शन करते आए हैं, परन्तु रहस्य खोलकर बताने का काम सतगुरू महाराज फकीरचन्द जी ने प्रमाणों के साथ बड़े साफ तरीके से किया है। यह उनकी निराली ही शैली है, जिसे साधारण मनुष्य बड़ी आसानी से समझ सकता है। उनका साहित्य अब पूर्णतया सुरक्षित नहीं है, इसलिए अब मैं अपने योग साधन के अनुभव व योग्यतानुसार टूटे-फूटे शब्दों में सत्संगों व पुस्तकों के माध्यम से यह सच्चाई बताने का प्रयास कर रहा हूँ कि सब कुछ मनुष्य के अन्दर है। सभी मनुष्यों में वह परमात्मा अंश रूप में मौजूद है। यह मनुष्य की अज्ञानता है कि वह अपने आपको दूसरे धर्म वालों से अलग मानता है। मनुष्य के साथ जो भी चमत्कार घटित होते हैं, वह सब उसी की आस्था, श्रद्धा व विश्वास का फल है, बाहर से कोई देवी-देवता व गुरू-पीर उसकी मदद के लिए नहीं आता है। केवल किसी अनुभवी, पूर्ण कामयोगी से सही समझ, विवेक, बुद्धि, अनुभव व ज्ञान लेना है। यह जिस महापुरूष से और जहां से मिले, ले लेना चाहिए। बस इतनी सी बात है।

ज्ञान देने वाले इन साधु, सन्त, ऋषि-मुनि व सन्त सतगुरू में भी अन्तर होता है।

साधु अन्तर में साधना करने वाले महापुरूष को कहते हैं।

ऋषि वे होते हैं जो संसार में शारीरिक व मानसिक जीवन की उन्नति और सामाजिक एकता की शिक्षा देते हैं। सामाजिक एकता में शिक्षा हमेशा समयानुसार बदलती रहती है, परन्तु मानसिक व आत्मिक शिक्षा एक ही रहती है। यद्यपि शारीरिक शिक्षा की विधि देश, काल और समय के अनुसार अलग–अलग होती है।

सन्त वह है जो अपने रूप में स्थित रहता है। यानि समता की स्थिति में रहता है।

सन्त सतगुरू वह है जो दूसरे मनुष्यों की प्रकृति और परिस्थिति को देखकर उपाय, विधि या ढंग बताता है।

सन्त सतगुरू वक्त वह होता है जो समयानुकूल शिक्षा को बदल जाता है, जिससे आम जनता में एकता और प्रेम भी स्थापित हो और वह इस सत, अलख, अगम की गति को भी प्राप्त कर सके।

प्राचीन काल में महर्षि वेदव्यास ने अपना गरूड़ पुराण निवृति मार्ग के विचार से ही लिखा था क्योंकि गरूड़ पुराण के कथन में और सन्तमत की शिक्षा में कोई भेद नहीं है। ये प्राचीन महापुरूष सन्त पदवी वाले और सन्त सतगुरू वक्त भी है। यह वाणी जाल है। वहां नाम की बजाय शब्द ब्रह्म कह दिया, प्रकाश की बजाय परब्रह्म कह दिया। अर्थात् केवल नाम बदल दिए हैं, बात एक ही है। जिस प्रकार संसार में यात्रा का आनन्द लेने के लिए साथी की जरूरत है उसी प्रकार इस आन्तरिक यात्रा में इष्ट की आवश्यकता है। इसलिए उस मोक्ष पद को पाने के लिए सतगुरू वक्त को इष्ट रखना अनिवार्य है, क्योंकि अगर इष्ट नहीं होगा तो मनुष्य भवसागर में ही गोता लगाता रहेगा। इस अन्तर की यात्रा में यह चौदह लोक का भवसागर है। जैसे :

भूः भुर्वः स्वः महः जनः तपः सत्यम्

या सहस्रदल कंवल, त्रिकुटी, सुन्न, महासुन्न, भंवर गुफा, सतलोक

या अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष, आनन्द मय कोष

अथवा तलब, इश्क, मार्फत, इस्तगना, फना।

यह भवसागर या काल का चक्र है। इनसे पार अन्तिम निज रूप है। सभी महात्माओं ने अपनी-अपनी भाषा और शैली में सच्चाई बताने का यत्न किया है, परन्तु यह सच्चाई न तो लिखी जा सकती है और न जुबान से ब्यान की जा सकती है, यह केवल किसी अनुभवी की संगत से अनुभव की जा सकती है। जैसे कोई सज्जन गुड़ खा रहा है और आप पूछें कि इसका स्वाद कैसा है, तो वह कहेगा मीठा है। आपके यह पूछने पर कि क्या लड्डू जैसा मीठा है तो वह कहेगा नहीं। इसी प्रकार आप अन्य मीठी वस्तुओं का नाम लेते रहेंगे और वह सज्जन इन्कार करता रहेगा। फिर वह सज्जन उसमें से एक टुकड़ा आपको तोड़कर देगा तो आप उसे खाकर उसके स्वाद का अनुभव कर सकेंगे। इसी को अनुभव कहते हैं। यह अनुभव हमें अनुभवी महापुरूषों के संग से ही मिल सकता है। अगर कोई जिज्ञासु इस आन्तरिक अनुभव को जानना चाहता है तो वह किसी अनुभवी महापुरूष से योग की विधि सीखकर स्वयं इसका अनुभव कर सकता है। अब किस महात्मा से यह विधि सीखी जाए यह उसके विश्वास की बात है, क्योंकि मैं कोई महात्मा नहीं हूँ, न ही मैंने कोई आश्रम बनाया है और न ही मैं कोई शिष्य बनाता हूँ। जहां प्रेमी भाई-बहन, बेटियां सत्संग करवाते हैं, वहीं मेरा आश्रम है और जो सत्संग सुनते हैं, वही मेरे शिष्य है। मैं अपना ज्ञान पुस्तकों के माध्यम से पढ़े-लिखे बुद्धिमान् सज्जनों को देना चाहता हूँ। अतः जो मेरी पुस्तकों को पढ़कर व समझकर दूसरे सज्जनों को पुस्तकें पढ़ाते हैं वही मेरे गुरू हैं। जो ज्ञान बांटता है उस ज्ञान का नाम गुरू है। दुनिया ने यह रहस्य नहीं समझा है :

गुरू पशु नर पशु त्रिया पशु वेद पशु संसार।

मानुष ताहिं जानिये जा में विवेक विचार।।

परन्तु सच तो यह है कि न तो शिष्य ही इस ज्ञान के अधिकारी है और न ये महापुरूष ही लोगों को सच्चाई का ज्ञान दे रहे हैं। जीव सन्तों के पास ज्ञान-प्राप्ति की इच्छा से नहीं जाते अपितु वे दुनियावी वस्तुओं की प्राप्ति के लिए जाते हैं। जैसा कि कबीर साहब ने कहा है -

ऐसी दीवानी भई दुनिया, भक्ति भाव नहीं बूझे जी।

कोई आवे बेटा मांगे, यही गुसाई दीजे जी।।

कोई आवे दुख का मारा, हम पर कृपा कीजे जी।

कोई करावे विवाह सगाई, भेंट रूपया दीजे जी।।

सांचे का कोई ग्राहक नाहीं, झूठे जग पतीजे जी।

कहे कबीर सुनो भाई साधो, अंधों का क्या कीजे जी।।

यह ठीक है कि दुनिया के लोग संसार के दुख लेकर सन्तों के पास जाते हैं, परन्तु यदि कोई वास्तव में सन्त है और इस गति में रहता है तो वह उस जीव को उचित सत्संग देकर उसका मार्गदर्शन करता है। वह यह नहीं करता कि दर्द तो है पैर में और पट्टी बांध दे हाथ में। सन्त वह है जो जीव को पहले उसकी इच्छा या चाह को पूरी करने की विधि बताए और बाद में उसे इस मार्ग पर लाए क्योंकि जब तक जीव अपने अज्ञान से इस संसार के दुखों से दुखी होता रहेगा वह आगे नहीं चल सकता, लेकिन देखने में यह आ रहा है कि आजकल के तथाकथित सन्त शिष्यों की उस भीड़ को सीधा परमात्मा से मिलने का उपदेश दे रहे हैं, जो उचित नहीं है।

इसलिए सन्त जीवों को चिताते हैं कि 'गुरू तो पूरा ढूंढ, तेरे भले की कहूं' क्योंकि पूरे गुरू के बिना यह जीवितमुक्त पद हासिल नहीं किया जा सकता। इसलिए पाखण्डी गुरुओं से बचाना अनिवार्य है। सन्त पाखण्डी गुरूओं को भी यह सन्देश देते हैं कि वे भोली-भाली जनता को

अंधेरे में न रखें, क्योंकि कर्म फल से आज तक न तो कोई बचा है और न ही बच सकेगा। इस विषय पर स्वामी जी महाराज ने निम्न शब्द में लिखा है –

तुम साध कहावत कैसे, मैं पूछूं तुमसे ऐसे।
मान न छोड़ों क्रोध न छोड़ो, कुटिल वचन नहीं सहते।।
कोमल चित्त न कोमल वाणी, दया भाव नहीं लेसे।।

आप पुजावत काहु न पूजत, मांग मांग धन जोड़त पैसे।
काम न छूटा लोभ न छूटा, मोह ईर्ष्या डारत पीसे।।

भजन भक्ति अभ्यास न करते, कभी न छूटो तुम इस जम से।
घर छोड़ा उद्यम पुनि छोड़ा, मेहनत कोई न करते।।

देश-विदेश फिरो झख मारत, कफन पहन क्यों लाज लगाते।
दंभ कपट छल हिरदे बसता, गिरही (गृहस्थी) को आचार दिखाते।।

चौके से हम रोटी खावें, रोटी पूरी भेद समझते,
बुद्धि विचार न गुरू मिला पूरा, गिरही की भय लज्जा करते।।

साध चरण अठशठ से उत्तम, भूमि पवित्र जहां पग धरते।
तुम तो कर्म भ्रम में भटके, साध नाम अपना क्यों धरते।

काल ठगौरी डाली तुम पै, भेष बनाया जगत को ठगते।
अब कुछ समझ करो सत संगत, डरो जरा नरकन के दुख से।।

विरह भाव वैराग सम्हालो, भक्ति करो और भागों जग से,
मन को मारो इन्द्री बांधो, सुरत लगाओ शब्द अधर से।।

तब चित कोमल बुद्धि निर्मल, आप होय छूटो मन ठग से।
अब क्या कहूं मैं बहुतक, अधिकारी माने एक तुक (संकेत) से।।

जो निर्लज्ज कपटी जग मारे, वह क्या जाने भूत पशु से।
सतगुरू सन्त कहत सुनाई, मानेंगे कोई हंस वचन से।।

कहने का भाव यह है कि साधु वह होता है जो किसी के आगे हाथ नहीं फैलाता। वह निष्पक्ष व निर्लोभी होता है और उसके हृदय में हमेशा दूसरों का भला व संसार का हित मौजूद रहता है। जैसा इस शब्द में लिखा है :

जिसके मन नहिं चिन्ता व्यापे, जग में वही है दास फकीर।

अभय रहे चित गुरू पद राखे, धीर वीर गम्भीर।
शान्त भाव व्यवहार परमारथ, कभी न हो दिलगीर।।

अपनी पीर न उर में साले, लखे पराई पीर।
पर की पीर न जिसे सताए, सो अधरम बे पीर।।

अपना रूप सम्भाले पल-पल, काट मोह जंजीर।
यह फकीर है गुरू का प्यारा, महावीर चित धीर।।

चाह गई चिन्ता सब भागी, आया भव निधि तीर।
हंस रूप धरि त्याग नीर को, गहि लिया ज्ञान का क्षीर।।

सतगुरू का सच्चा बालक, पहर वैराग का चीर।
तन के रहते मुक्त विदेही, सहे न द्वन्द्व शरीर।।

अत: इस ज्ञान देने का अधिकारी वही है जो मन, वचन व कर्म से पवित्र हो और जो जीव को यह यकीन दिला दे कि वह परमात्मा कहीं और नहीं अपितु उसी के घट में मौजूद हैं।

✳✳✳✳

परमात्मा मनुष्य के घट में है

ज्यों तिलों में तेल है, ज्यों चकमक में आग।
तेरा प्रीतम तुझ में, जाग सके तो जाग।।

पर्दा दिया भ्रम का, ताते सूझे नाही।
पावक रूपी राम है, घट-घट रहा समाय।।

जितने मत उतने मता, बहु वाणी बहु भेष।
सब घट व्यापक साईयां, अगम अपार लेख।।

वह मालिक, वह परमात्मा एक है जो हर जीव में अंश रूप में मौजूद है, लेकिन जीव अज्ञानता से उसे बाहर खोजता फिरता है। सच्चा सतगुरू उसको विश्वास दिलाता है कि वह मालिक उसके अन्तर में ही है, उसे बाहर खोजने की आवश्यकता नहीं। जैसा कि कबीर साहब ने लिखा है :

पानी में मीन प्यासी, मोहे सुन-सुन आवे हांसी।

आत्म ज्ञान बिना नर भटके, कोई मथुरा कोई काशी।
जैसे मृग नाभ कस्तूरी, वन-वन फिरत उदासी।।

जल विच कमल, कमल विच कलियां, तां पर भंवरा निवासी।
सो मन बस कर लोक भया, सब जपी-तपी सन्यासी।।

जाको ध्यान धरे नित हरिहर, मुनि जन सहस्र अठ्ठासी।
सो तेरे घट माहि विराजे, परम पुरूष अविनाशी।।

है हाजिर तोहे दूर बतावे, दूर की बात निरासी।
कहे कबीर सुनो भाई साधो, गुरू बिन भ्रम न जासी।।

इस शब्द में कबीर अध्यात्म ज्ञान में आत्म तत्व के खोजियों को यह विश्वास दिला रहे हैं कि मछली पानी में रहती है और कहती है कि मैं प्यासी मर रही हूँ। यही हाल मनुष्य का है। परमात्मा तो उसके अन्दर है और वह इसे बाहर कभी काशी, कभी मथुरा तो कभी पहाड़ों व कन्दराओं में ढूंढ रहा है। वह उस परमात्मा को जानने के लिए कभी किसी गुरू के पास तो कभी किसी गुरू के पास भटकता फिर रहा है। और यह बात उसी तरह लगती है कि कस्तूरी तो हिरण की नाभि में है और वह उसे वन की झाड़ियों में ढूंढता फिरता है। जैसे कमल पानी में खिला हुआ है और उसकी कलियों पर भंवरे मस्त होकर मंडरा रहे हैं, इसी प्रकार यह मनुष्य संसार की वस्तुओं पर मस्त हो रहा है। उसे यह समझ नहीं है कि ये आज हैं और कल नहीं होगी। कुछ जपी-तपी सन्यासी मन को वश में करके ऊपर के सूक्ष्म लोकों का आनन्द लेते हैं और समझते हैं कि यही मंजिल है, जबकि परमात्मा की मंजिल इससे आगे हैं। शब्द में आगे कहा है कि जिस परम पुरूष का ध्यान हरि हर व बड़े-बड़े ऋषि मुनि करते हैं, वह अविनाशी पुरूष तो उसके घट में ही है परन्तु अज्ञानी महापुरूष उसे बहुत दूर बताते हैं, जिसे सुनकर जीव निराश हो जाता है। अतः सतगुरू के बिना यह भ्रम दूर होने वाला नहीं है। गुरू ही मनुष्य को यह यकीन दिलाता है कि वह मालिक उसके अन्तर ही है और उसे योग विधि से जाना जा सकता है।

जब मनुष्य को यह विश्वास हो जाता है वह उस मालिक का अंश है, यहां मेरा कुछ नहीं है और मेरा यह सब खेल उसी का है, यह दुनिया तो एक सराय है और मैं यहां का वासी नहीं हूँ। बस इस निश्चय

का रहना ही परमात्मा को याद रखना है और इस दृढ़ निश्चय के रहते हुए, संसार में सब काम निष्काम भाव से करते हुए वह जीवन्मुक्त अवस्था में रह सकता है।

लेकिन यह भेद उसे बाहरी गुरू से ही मिलेगा। बाहरी गुरू जीव को ज्ञान देता है कि जिस मालिक को तू बाहर खोज रहा है वह तो आपके अन्दर ही विराजमान है। तू उसे योग दृष्टि से अपने अन्दर ही खोज क्योंकि जिसे तू खोज रहा है वह तू आप ही है। जैसा कि महर्षि शिवव्रत लाल जी ने लिखा है –

ढूंढता फिरता है किसको, ढूंढ वह तू आप है।
तू नहीं समझा अभी तक, यह हृदय का ताप है।।

चाह करना हो तो कर, अपनी यही अच्छी है चाह।
झूठे बेटे और बहु सब, झूठे माँ और बाप है।।

त्याग चिन्ता मन से सबकी, आज समझ ले मरम को।
क्या कहूं चिन्ता का निशदिन, तुझको रहता ताप है।।

तूने अपने को फंसाया, मोह के जंजाल में।
मोह माया कल्पना यह, मन की तोल और माप है।।

आप ही अपनी परख कर, आपको पहचान ले।
तू अकेला एक है, संसार सब चुपचाप है।।

कर ले संगत गुरू की कुछ दिन, आये आपे की समझ।
गढ़ के मूरत, मूरती, पूजक बना क्यों आप है।।

सतगुरू की दया से, ज्ञान हो निज आपका।
आप निज का भूलना ही, है भ्रम और पाप है।

इस प्रकार गुरू जीव के परमात्मा सम्बन्धी अज्ञान के पर्दे को दूर कर उसे अन्तरमुखी बना देता है और उसे अन्तर में दाखिल होने की विधि बता देता है। जैसा की कबीर साहब ने कहा है –

गुरू से कर मेल गंवारा, का सोचत बारम्बारा।।
जब पार उतरना चाहिए, तब केवट से मिलि रहितये।।

जब उतरि जाय भवपारा, तब छूटै यह संसारा।।
जब दरसन देखा चाहिए, तब दर्पण मांजत रहिये।।

जब दर्पण लागत काई, तब दर्सन कहाँ ते पाई।।
जब गढ पर बजी बधाई, तब देख तमासे जाई।।

जब गढ विच होत सकेला (सिमटाव), तब हंस चलत अकेला।।
कहे कबीर देख मन करनी, वा के अन्तर बीच कतरनी।।
कतरनि के गांठि न छूटै, तब पकरि पकरि जम लूटै।।

✳✳✳✳

योग-विधि

सतगुरू अन्तर में परमात्मा का साक्षात्कार करने के लिए जीव को योग की विधि बताता है। योग का अर्थ आत्मा को परमात्मा से जोड़ना है। यह योग कोई मंजिल नहीं। यह मन पर जन्म-जन्मांतरों से पड़े हुए घटिया व बढ़िया संस्कारों को हटाना है ताकि मन को पवित्र बनाया जा सके। महापुरूषों ने अन्तरमुखी होने के लिए योग के विभिन्न केन्द्रों को अपनी-अपनी शैली में वर्णित किया है जो इस प्रकार है :

1. **सहस्राकार :** सहस्राकार मन में अनेक प्रकार के ख्याल व विचार उठते रहने की अवस्था है। इसका स्थान दोनों आंखों के बीच में है जहां स्त्रियां बिन्दी लगाती हैं। यहां अपने इष्ट का ध्यान करके मन को एकाग्र किया जाता है और मन के एकाग्र होने पर मानसिक शक्ति बढ़ जाती है और मन स्वस्थ हो जाता है, जिससे मनुष्य की इच्छा जल्दी पूरी हो जाती है और यदि यहां इष्ट का रूप प्रकट हो जाए तो उसमें सिद्धि शक्ति आ जाती है। अत: साधक को यहां यह सावधानी बरतनी चाहिए कि वह ऐसी स्थिति में कभी घटिया विचार न रखे नहीं तो उसका नुकसान हो जायेगा।

2. **त्रिकुटी :** दूसरा स्थान माथे के बीच में इष्ट का ध्यान करना है जो त्रिकुटी कहलाता है। यहां ध्याता, ध्यान और ध्येय तीनों मौजूद होते हैं। यह इस लोक और परलोक के समस्त ज्ञान का केन्द्र है। हिन्दू इसे ओ३म् का स्थान कहते हैं। यह समस्त विज्ञान इसी स्थान पर ध्यान करने का परिणाम है। आयुर्वेद के रचयिता भी इसी स्थान पर आए तथा और भी जिन्होंने खोज की वह भी इसी स्थान पर आए और अपनी इच्छाओं की पूर्ति में

सफल हुए। इस अध्यात्म ज्ञान का अनुभव किसी अनुभवी पुरूष की देखरेख में करना चाहिए, नहीं तो दिमाग का संतुलन बिगड़ने का भय रहता है।

3. **सुन्न :** यह स्थान ओ३म् के थोड़ा ऊपर है। यहां शरीर सुन्न हो जाता है और मन काम नहीं करता। इस स्थान पर साधक को मस्ती व बेफिक्री बनी रहती है।

4. **महासुन्न :** यहां साधक को होश नहीं रहता है वह अपने आपको भूल जाता है। यह स्थान गृहस्थी के लिए ठीक नहीं है।

5. **सोहम् :** यह स्थान महासुन्न से थोड़ा ऊपर है। यह कर्ता पुरूष का स्थान है। इसको ब्रह्म भी कहते हैं। यही इस दुनिया की रचना करता है।

6. **सतलोक :** यह स्थान वहां है जहां सिर के बाल माथे पर मिलते हैं। यह प्रकाश और शब्द का लोक है। इस सतलोक की छाया से ही यह स्थूल लोक बनता है जिसमें हम जी रहे हैं। प्रकाश तो सृष्टि की रचना करता है और शब्द मनुष्य की जान है यानी सुरत है।

मेरे पास इन स्थानों की सही व्याख्या करने के लिए उचित शब्द नहीं है। मैंने केवल अक्ली तौर पर यह जानकारी आप लोगों को बताई है। पूरा ज्ञान तो खुद के अनुभव से ही जाना जा सकता है और सच तो यह है कि मैंने इन स्थानों का अनुभव किया ही नहीं। मेरा अनुभव तो सीधा उस सार शब्द राम नाम या अलख का है जो मुझे गुरू के पास जाने पर, जब वह सहज समाधि में थे, उनकी Radiation विकिरणधारा से सहज ही प्राप्त हो गया था। उसके लगभग 6 साल बाद यानी 1962 में मैं अगम लोक का साधन करते-करते अनाम में जा पहुंचा। और इस अनाम की अवस्था के बारे में जब मैंने अपने गुरू जी को बताया तो उन्होंने मुझे

थोड़ा सत्संग देकर समझाया कि अब तुम अध्यात्म की मंजिल पर पहुंच जाओगे। अपना प्रारब्ध कर्म भोगते हुए, इसे परमात्मा का खेल समझते हुए प्रवृति मार्ग पर सत्संग देते रहना और दुनिया में मत उलझना।

जब मनुष्य की यह सुरत साधना करते-करते शरीर व संकल्प से परे यानी मन के मण्डल से ऊपर निकल जाती है तो यह आत्मपद में पहुंच जाती है जहां प्रकाश ही प्रकाश है और यह प्रकाश ही ब्रह्मा है, कर्ता पुरूष है। यही सोऽहम् है। इसी के संकल्प के कारण यह कुल सृष्टि छाया रूप में खेल-खेल रही है। जीवन, मृत्यु, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, देवी-देवता व सुर-असुर सभी इसके संकल्प का परिणाम हैं। इस प्रकाश, ब्रह्म व कर्ता पुरुष की दुनिया से निकलना कठिन है क्योंकि देह का बन्धन नीचे खींच लाता है।

परन्तु जिस पर गुरू की कृपा हो और जिसे यह रहस्य समझ में आ जाए तो वह अपनी सुरत को इस आत्म पद से ऊपर शब्द में ले जाता है और इस शब्द की धार को पकड़कर साधन करते-करते यह सुरत अन्त में उस शब्द में ही समा जाती है और जब वह चेतनता में आती है तो जो स्थिति सुरत की शब्द में समाने के समय थी, उस स्थिति के बारे में जुबान से वर्णन नहीं किया जा सकता, बस अनुभव किया जा सकता है। इसलिए वह मालिक क्या है, कैसा है? कोई शब्दों में बता ही नहीं सकता। सन्तों ने उसे अकह, अपार, आगध व अनामी कहा है। जो सतलोक के आगे के स्थान है जहां पर सार शब्द का अनुभव ही निज घर का अनुभव करा सकता है। इस अनुभव में रहते हुए जीवन की यात्रा गुजारना ही मेरे अनुभव में अगम देश है।

शब्द प्रकट तब धरिया नाम।
शब्द गुप्त तब हुआ अनाम।।

इस सुरत का स्थूल रूप सतपद है, सूक्ष्म रूप अलख है और

कारण रूप अगम है। इनके परे अनामी धाम है यह सब अनुभव से ही जाने जा सकते हैं। इन ऊपर के लोकों में सांसारिक आनन्द नहीं रहता है, उदासीन वृत्ति हो जाती है परन्तु गुरू कृपा से मेरी स्थिति कुछ और ही है।

संग देकर सत् का सत्संग में जीव अधीन को।
सिध सद्गति से मिलाया जीव रूपी मीन को।।

इस प्रकार सतगुरू ही हमें यह रास्ता दिखलाता है कि यह दुनिया हमारा देश नहीं है और इसका पता देह व मन को छोडने पर ही लगता है। सतगुरू शारीरिक, मानसिक व आत्मिक ज्ञान का अनुभव रखते है, अतः वे मनुष्य को शारीरिक, मानसिक व आत्मिक जीवन बनाने के लिए उचित राय दे सकते हैं और साथ ही इस मायाजाल के चक्र से निकलने की तजबीज व विधि बता देते हैं। वे मनुष्य का भ्रम दूर कर देते हैं कि वह मालिक हर वक्त तेरे साथ है। तुम उसे हर स्थिति में हर हाल में व हर पल में महसूस कर सकते हो और अपने घट में ही उसके दर्शन कर सकते हो। जैसे :

घट में दर्शन पाओगे, सन्देह कुछ इसमें नहीं।
मैं तो घट में हूँ तुम्हारे, ढूंढ लो मुझको वहीं।।

शब्द सुनते हो मेरा, अन्तर में चित्त को साधकर।
सुरत मेरा रूप है, इसको समझ लेना यहीं।।

सूक्ष्म हूँ, स्थूल हूँ, कारण हूँ, कारण से परे।
देख लो दृष्टि जमाकर, अपने अन्तर में कहीं।।

चाह जब दर्शन की होगी, देख लोगे आप तुम।
जागते में सोते में, सन्ध्या में मैं हूँ सब कहीं।।

राधास्वामी धाम में, सेवक हूँ राधास्वामी का।
मेल मेला राम में, इसकी परख आई नहीं।।

और अन्तर में उस परमात्मा के दर्शन कैसे किए जा सकते हैं, उसे इस निम्न शब्द में इस प्रकार लिखा है –

गुरू घाट चलो मन भाई।
सुरत चदरिया लेव धुलाई।।

सेवा साबुन दर्शन मन्जन।
प्रेम की नीर भराई।।

वचन की रेह भाव की भट्ठी।
विरह की अग्नि जलाई।।

भक्ति नदी जहां निश दिन बहती।
मल मलता मैं मैल गंवाई।।

उज्ज्वल निर्मल हुई सुरत अब।
ओढत मन अब अति हरसाई।।

चला गगन पर मिला शब्द संग।
चढ़त-चढ़त त्रिकुटी दिंग आई।।

सुन्न शिखर चढ़ हंस रूप धर।
महा सुन्न छवि और ही पाई।।

भंवर गुफा पर सोहम् सोहम्।
सतलोक सत सोहम् गाई।।

अलख अगम को देखत देखत।
सतगुरू चरण जाय समाई।।

नोट : रेह-कपड़ा साफ करने का साबुन।

और यह भेद कोई अनुभवी, भेदी महापुरूष ही दे सकता है, जिसके बारे में कबीर ने इस प्रकार कहा है -

शब्द

मरहम होय सो जाने साधो, ऐसा देश हमारा है।।
वेद कतेब पार नहिं पावें, कहन सुनन से न्यारा है।।
जात वरण कुल किरिया नाहीं, सन्ध्या नियम आचारा है।।
बिन जल बूंद पड़त जहां भारी, नहिं मीठा नहि खारा है।।
सुन्न महन में नौवत बाजे, किंगरी बीन सितारा है।।
बिन बादल जहां बिजली चमके, बिन सूरज उजियारा है।।
बिना नैन जहां मोती पोहे, बिन सुर शब्द पुकारा है।।
जो चल जाय ब्रह्म जहां दरसे, आगे अगम अपारा है।।
कहें कबीर तहां रहन हमारी, बूझे कोई गुरूमुख प्यारा है।।

✳✳✳✳

मनुष्य का रक्षक कौन?

गुरू के चार रूप कहे गए हैं - श्री गुरू, सतगुरू, जुगादि गुरू और आदि गुरू। श्री गुरू बाहर का गुरू है और इस श्री गुरू की संगत से सतगुरू यानी सच्ची समझ या सतज्ञान मिलता है। जुगादि गुरू जो युगों से चला आ रहा है वह अन्तर का गुरू शब्द है। आदि या असली गुरू अनुभव ज्ञान है।

वह जो कुल मालिक, सर्वाधार है, वह केवल एक परम तत्व (Supermort Element) है। उसमें चेतनता नहीं है। उस परम तत्व से एक हिलोर उठती है जिससे शब्द प्रकट होता है और फिर चेतनता प्रकट होती है। वह कुल मालिक मनुष्य का रक्षक नहीं है, क्योंकि वह तो तटस्थ, सर्वाधार व एक रस है। इस संसार में तुम्हारा, दुनिया का, परमार्थ का तथा ये जितने जीवन के खेल हैं, उनमें कौन रक्षक है? वह जो आदि है, चेतनता है, अनुभव है, ज्ञान है, विवेक है या बुद्धि है। इस लिए संसार में पूज्य सतगुरू का स्वरूप, निज रूप या स्वयं है। वह मालिक यहां कुछ नहीं करता। क्योंकि वह यहां नहीं रहता। जैसे सूर्य यहां नहीं रहता केवल उसकी किरणें यहां आती है। यदि सूर्य पूर्ण रूप से यहां आ जाए तो यह पृथ्वी जल कर आग ही हो जाए। इसी प्रकार वह मालिक यहां आ जाए तो यहां न सूर्य होगा, न चन्द्रमा, न तारे तथा न ही कुछ और। सब एक हो जायेगा। अत: वह मालिक तो एक आधार है जिससे यह सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र तथा लोक-लोकान्तर बनते हैं और उनकी किरणें यहां संसार में काम करती है। वह मालिक न तो किसी के पाप-पुण्य देखता है और न ही किसी को दुख या सुख देता है, वहां न जीवन है न मृत्यु। यह करने वाले लोक-लोकान्तरों की किरणें है अथवा सूर्य, चन्द्रमा, बुद्ध, बृहस्पति, मंगल इत्यादि ग्रहों की किरणें है। हमारी सुरत जो हमारा अपना आपा है, वह उस मालिक की अंश है जो शरीर में रहती हुई शरीर को अनुभव करती है, मन में रहती हुई मन को अनुभव करती है, प्रकाश में रहती हुई

प्रकाश को देखती है तथा शब्द में रहती हुई शब्द को सुनती है। वह इन सबसे अलग है, साक्षी है। अत: यदि कोई सच्चा मालिक इन लोक-लोकान्तरों में है तो वह है मनुष्य की सुरत और मनुष्य की सेवा ही मालिक की सेवा है।

संसार के लोग जो मन्दिर, मस्जिद आदि में राम को ढूंढते फिरते हैं, वो नहीं जानते कि असली राम वहां नहीं है, वो राम तो उनका अपने मन का ही बनाया हुआ है। असली परमात्मा तो सुरत रूप में या अंश रूप में हर घट में समाया हुआ है। जैसे -

भान रूप मालिक सुन भाई।
हर हिरदे में रहा समाई।।

मनुष्य अज्ञानता के कारण ही मालिक के नाम पर भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय बनाए बैठे हैं और अपने सम्प्रदाय से दूसरे सम्प्रदाय वालों को छोटा और अपने को बड़ा समझते हैं और यही भाव आज के गुरू महाराजाओं का है। वह लोगों को तो मानवता का पाठ पढ़ाते हैं ओर उनकी स्वयं की स्थिति यह कि एक आश्रम का गुरू दूसरे आश्रम के गुरू से मिलना ही नहीं चाहता। अत: वही मनुष्य ज्ञान देने का अधिकारी है जो खुद ज्ञानी व जीवन्मुक्त हो। जो खुद बन्धन में है वह दूसरों को क्या बन्धन मुक्त करेगा। जैसा इस शब्द में कहा है -

सन्तों समझें का मत न्यारा, जो आत्म तत्व विचारा।

औरन से कहे आपा खोजो, आप अपना नहीं जाने।
मुख कुछ आन हिरदे कुछ आन, कैसे राम पहचाने।।

औरों से कहे मोह न कीजे, निर्मोही होय रहिये।
माया मोह सकल आप में, या दुख कासों कहिये।

औरन से कहो तजो बड़ाई, आप बड़ाई चाहे।
मान बड़ाई छूटत नाहीं, झीना पीर कहावे।।

औरन से कहे पक्ष न लीजे, आपा पक्ष न त्यागे।
कहन सुनन को साध कहावे, सांच कहे रीस लागे।।

जब लग राग द्वेष मन माहीं, स्तुति निन्दा भाये।
तब लग त्रय ताप ना छूटें, कहा भये भव गाये।।

पद साखी औरन समझावे, आपे समझे नाहीं।
कहें कबीर राम क्यों दरसे, जब दुविधा मन माहीं।।

इस प्रकार यह सारी दुनिया इस अज्ञान में फंसी है और ऐसे गुरूओं के चेले सारी उम्र आश्रमों से बंधे रहते हैं और एक-दूसरे के प्रति ईष्या, द्वेष व घृणा के भाव रखते हैं और सच्चाई न मिलने से ज्ञान से कोसों दूर रहते हैं। ऐसे गुरू व चेलों के लिए सन्त वाणी का एक शब्द है -

गुरू जी मैं गुनहगार अति भारी।
काम क्रोध और छल चतुराई, इन संग मेरी यारी।।

लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, मान बड़ाई धारी।
कपटी लम्पट झूठा हिंसक, अस अस पाप करा री।।

दुख निरादर सहा न जाई, सुख आदर अभिलाषा भारी।
इन्द्रिन स्वाद अधिक रस चाहे, मन रसना यही चाट पड़ा री।।

धन और कामिन चित्त बसावे, पुत्र कलित्र आस भरा री।
नाना दुख नित पावत पापी, तो भी यह करतूत न छोड़ी।।

यह मन दुष्ट काल का चेरा, नित भरमावत निडर हुआ री।
जब-जब चोट पड़ी दुःखन की, तब-तब डर-डर भजन करा री।।

देखो दया मेहर सतगुरू की, इसी भजन को मान लिया री।
बुद्धि चतुराई वचन बनावट, हारजीत की चर्चा धारी।।

शेखी बहुत प्रीति नहीं अन्तर, भोले भक्तन धोखा दिया री।
नर-नारी बहुतक बस कीन्हें, मान प्रतिष्ठा भोग किया री।।

गुरू संग प्रीति कपट कुछ डर की, कभी थोड़ी कभी बहुत किया री।
कहां लग औगुन बरनूं अपने, याद न आवत भूल गया री।।

चोरी चुगल इन्द्रिय रस माता, मतलब की सब बात बिचारी।
खुद मतलबी निर्दयी मानी, बहुतन का अपमान किया री।।

हे सतगुरू अब दया विचारो, क्या मुख ले अब करूं पुकारी।
नहीं परतीत प्रीति नहीं रंचक, कस-कस मेरा करो उबारी।।

मुझ सा कुटिल और नहीं जग में, तुम सतगुरू मोय लेउ सुधारी।
जतन करूं तो बनि नहीं आवत, हार-हार अब शरण पड़ा री।।

यह भी बात कहीं मैं मुंह से, मन से कहना कठिन भया री।
शरण लेना यह भी कहना, झूठ हुआ मुंह का कहना री।।

तुम्हरी गति मत तुम ही जानो, जस-तस मेरा करो उबारी।
मैं तो नीच निपट संशयरत, लगे न चरनन प्रीति करारी।।

मेरे रोग असाध भरे हैं, तुम बिन को अस करे दवारी।
जब चाहो तब छिन में टारो, मेहर दया की मौज निहारी।।

बार-बार करूं मैं बिनती, और प्रार्थना करूं तुम्हारी।
तुम बिन और न कोई दीखे, तुम ही हो मेरे रखवारी।।

बुरा-बुरा फिर बुरा-बुरा हूँ, जैसा-तैसा आन पड़ा री।
अब तो लाज तुम्हें है मेरी, सतगुरू दाता खोवो बला री।।

इस शब्द में राधास्वामी गुरू ने स्वयं इन शब्दों में अपनी कमजोरी को स्वीकार किया है -

गुरू जी मैं गुनहगार अति भारी।
नर-नारी बहुतक बस कीन्हा, भोले भक्त धोखा दिया री।

और कबीर साहब ने इस सच्चाई को रहस्य में इस प्रकार कहा है :

'धर्मदास तोहे लाख दुहाई, सार भेद बाहर न जाई।'

इन जीवित गुरूओं को उनके विश्वासी भक्त पूजवाते हैं। जैसे मन्दिरों में पुजारी देवताओं को पूजवाते हैं और आने वाले भक्तों को कहते हैं कि देवी माई से, बाला जी से, राम व कृष्ण से जो भी चाहते हो, मांग लो। यहां सब कुछ मिलेगा। इसी प्रकार ये शिष्य भक्तों को गुरू जी के प्रति विश्वास दिलवाते हैं और खेल सब विश्वास का है **'विश्वासम् फलदायकम्।'**

अब इतने बड़े-बड़े सन्त ही सच्चाई खोलकर नहीं बताते तो यह सच्चाई मनुष्य को कैसे पता चलेगी ? इसलिए मेरी इन महात्माओं से यह विनम्र प्रार्थना है कि वे मन, वचन व कर्म से पवित्र होकर इस गुरूवाई का काम करें तो वे अपना, चेलों का और पूरी मानवता का कल्याण कर सकते हैं क्योंकि यह ज्ञान जिस नीयत से दिया जायेगा, वही फलेगा फूलेगा। इसलिए पहले अपने सुधार की आवश्यकता है क्योंकि अपने सुधार में ही सबका सुधार है। इसलिए कहा है कि :

'गुरू तो पूरा ढूंढ रे, तेरे भले की कहूं।'

हमारे इस धार्मिक पक्षपात को मिटाने के लिए आज इस शिक्षा

की जरूरत है कि हम इस सच्चाई को समझ लें और जान लें कि हम सब उस परमात्मा के अंश है। हम आपस में भाई-भाई हैं। अलग-अलग सम्प्रदाय वाले होने से हम अलग-अलग नहीं है और उस मालिक की असली पूजा यही है कि इन्सान-इन्सान के काम आए, उसका दिल न दुखाए और आपस में प्रेम-प्यार से रहे क्योंकि हम सबमें वही एक परमात्मा विराजमान है। वह हर समय, हर हालत में आपके अंग संग है। यह बात खुद मालिक ने यहां बताई है -

धरा सन्त अवतार जग को चेताया।
दुखी दीन को अंग अपने लगाया।।

तो बात स्पष्ट है कि वह जो मालिक ऊपर रहता है, वह मनुष्य की कोई सहायता नहीं करता है। वह तो अजर, अमर व अटल है जो अपने स्वरूप में आप खेलता है। मनुष्य का अपना संकल्प व विश्वास ही उसका सहायक है और यह भेद सतगुरू ही उसे देता है। वह मनुष्य को ज्ञान देकर मन व माया के चक्र से बाहर निकलने का सही रास्ता बताता है। इसलिए इस दुनिया में मनुष्य के पूजने योग्य ज्ञान गुरू है और वही मनुष्य का रक्षक है और यह ज्ञान किसी अनुभवी जीवन्मुक्त पुरूष से ही मिलेगा। इसलिए सतगुरू की वन्दना है -

नमो सतगुरू सच्चिदानन्द रूपम्।
नमो अद्भुतम् अद्वितीयम् अनुपम्।।

लेकिन जब तक मनुष्य खुद इस ज्ञान का अनुभव नहीं करेगा तो वह पूरी तरह से यह बात समझ नहीं सकेगा कि हमारी सुरत का उस रचना से कोई सम्बन्ध नहीं है, वह तो अजर-अमर अविनाशी है। और जब सुरत को ज्ञान हो जायेगा तब वह अपने उसी घर चली जायेगी जहां से यह आई है और उसके सारे भेदभाव समाप्त हो जायेंगे। यह मेरा अपना अनुभव है। मेरे पास इसका कोई प्रमाण नहीं है।

✶✶✶✶

योग और विज्ञान

इस संसार में योग और विज्ञान एक है। योग शान्ति के पथ पर चलने का एक तरीका है। यह शान्ति चित्त की वृत्ति को एकाग्र करने से मिल सकती है। चित्त की वृत्तियों का बिखर जाना ही मनुष्य की अशान्ति का कारण है और इनका एकाग्र होना सुख का कारण। यही पंतजलि का योग सूत्र है – **'योगश्च चित्त वृत्ति निरोधः।'**

जब मनुष्य की चित्तवृति माथे के बीच में एकाग्र हो जाती है तो उसकी इच्छा शक्ति बढ़ जाती है और वो जो सोचता है पूरी हो जाती है अर्थात् उसमें सिद्धि शक्ति आ जाती है। यह विज्ञान की खोज इसी स्थान की देन है, वैज्ञानिकों की सुरत जब जाने अनजाने में यहां आ जाती है तो वह जो जानना चाहते है उसका उन्हें यहां जवाब मिल जाता है।

अतः योग एक सम्पूर्ण मानसिक विज्ञान है। यह अन्धविश्वास करना नहीं सिखाता अपितु अनुभव से जानना सिखाता है, यह कहता है कि आप अन्धविश्वासी मत बनो, अपितु अपनी अन्तर की आंखे खोलो। यह सत्य के विषय में मुंह से कुछ नहीं कहता अपितु आन्तरिक दृष्टि की चर्चा करता है। यह आन्तरिक दृष्टि कैसे मिले? इस विषय में यह कल्पना भी नहीं की जा सकती कि एक अकेले व्यक्ति ने पूरा विज्ञान निर्मित किया है। अतः योग एक अनुभव पर आधारित विज्ञान है।

जिस तरह वर्तमान वैज्ञानिकों ने पदार्थ की जांच करके एक नया दौर पेश किया है, उसी प्रकार योगी (सन्त) इस संकल्प की दुनिया में सुधार करते हुए एक नया दौर ले आते है। जिस प्रकार कारखानों में (खतरे) Danger का साइनबोर्ड लगा रहता है, क्योंकि वहां के इंजिनियर को यह पता होता है कि यहां बिजली है और खतरा है, उसी प्रकार समाज

में ईर्ष्या, द्वेष, नफरत व घृणा आदि के विचारों को देखकर सन्त लोगों को सावधान करते हैं कि इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा। अब अगर कोई नहीं सुनता या मानता तो उसका परिणाम तो भोगना ही पड़ेगा।

विज्ञान केन्द्रित विषय वस्तुओं पर अगर व्यक्ति स्वयं को नहीं मानता तो अन्य सभी बातें भ्रान्तिपूर्ण होगी। केवल ध्यान ही मदद कर सकता है। दर्शनशास्त्र का सम्बन्ध मन से है और योग का संबंध चेतना से है। योग चेतना से कैसे जुड़ना है? योग दृष्टा और जागरूक हो जाने का विज्ञान है। यह सीधा साधा स्वयं को देखने का विज्ञान है। तुम संसार में रहते हो और संसार तुम्हारा ध्यान भंग नहीं करता तब तुम केन्द्रित हो जाते हो।

महर्षि पंतजलि ने अपने योगदर्शन में योग के साधन, प्रणालियों और विधियों पर प्रकाश डालते हुए योग साधक की विभिन्न स्थितियों और विभूतियों का स्पष्ट रूप से वर्णन करते हुए 195 सूत्रों में योग साधना के पंथ को पूरा आदि से अन्त तक चित्रित किया है।

मेरे अनुभव, विवेक व योग साधन के ज्ञान के आधार पर भारत में आत्मा-परमात्मा के अनुभव ज्ञान के जितने भी साधक हुए हैं, उन्होंने मन्त्र व तन्त्र विधि से अपनी-अपनी योग्यतानुसार लिखा या बताया है। महर्षि पंतजलि ने 195 सूत्र लिखकर अन्त में कहा है कि यदि तुम कुछ यत्न नहीं कर सकते हो तो केवल किसी वीतराग पुरूष को अपनी खोपड़ी में रखो जिससे तुम्हारे सब योग सिद्ध हो जायेंगे। मेरे विचारानुसार यह विज्ञान और योग दोनों है। यानी मन्त्र और तन्त्र दोनों विधियां मिला दी हैं। अब वीतराग पुरुष को खोपड़ी में तभी रखेंगे जब उसमें विश्वास है और विज्ञान यहां यह है कि उस वीतराग पुरुष की पवित्र Radiation जो ब्रह्माण्ड में फैले हुए हैं, साधक में आ जायेंगे और वह वीतराग हो

जायेगा। जैसे मेरे अन्दर मेरे गुरू जी जो वीतराग थे, Radiation से वह अवस्था आ गई।

पंतजलि के योग सूत्र मन्त्र और तन्त्र दोनों में काम कर रहे हैं। यह प्रयोग क्या है? अनुभव के बाद निश्चयात्मक बुद्धि ही तो है। एक डाक्टर तन्त्र विधि का ही तो प्रयोग करता है। वह पहले मरीज को जांच कर तीन दिन की दवा देता है और उसका परिणाम देखकर जब उसको विश्वास हो जाता है कि दवा काम कर रही है, जब वह वही दवा ओर आगे बढ़ा देता है और यदि दवा असर नहीं करती है तो उसे बदल देता है।

मन्त्र मार्ग के गुरू पीर भी अपने शिष्य को अनुभव के लिए योग विधि बताकर यही कहते हैं कि :

'जब लग न देखो अपने नैना।
तब लग न मानो गुरू के बैना।।'

'ज्ञान के तीन रूप है स्वामी, अनुभव है उनकी चोटी।
शब्द मिले, अनुमान मिले, अनुमान के साथ प्रमाण मिले।।'

हर मनुष्य की प्रकृति भिन्न-भिन्न है, अत: जहां से उसे यह समझ, विवेक, बुद्धि, अनुभव व ज्ञान मिले, ले लेना चाहिए। इसके लिए कहा है -

गति मति कीर्ति भूति भलाई।
जो जस जतन जहां से पाई।।
सो जानो सत्संग प्रभाऊ।
वेद लोक नहीं आन उपाऊ।।

कबीर ने अनुभव पर आधारित एक शब्द लिखा है :

साधो एक आप जग माहीं।
दूजा कर्म भ्रम है कृत्रिम, ज्यों दर्पण में छांही।

जल तरंग जिमि जल में उपजे, फिर जल माहिं रहाई।
काया झांई पांच तत्व की, विनसे कहां समाई।।

या विधि सदा देह गति सबकी, या विधि मन ही विचारो।
आप होय न्याव करी न्यारो, परम तत्त्व निर्वारो।।

सहजै रहै समाय सहज में, ना कछु आवे न जावे।
धरे न ध्यान करै नहिं जप-तप, राम-रहीम न गावे।।

तीर्थ व्रत सकल परित्यागे, सुन्न डोर नहीं लावै।
यह धोखा जब समझ परै, तब पूजै काहि पुजावै।।

जोग जुगति में भ्रम न छूटै, जब लग आपा न सूझै।
कहे कबीर सोई सतगुरू पूरा, जो निज आपा बूझै।।

अध्यात्म में यह निज रूप का अनुभव ही मंजिल है, जिसका भेद अन्तर में खोज करने पर मिलता है। जैसे -

पिया की खोज करे सोई पावे। (टेक)

ये कर्ता बसिया घट भीतर, कहत न कछु बनियावै।
स्वांसा सार सुरत में राखे, त्रिकुटी ध्यान लगावै।।

नाभि कंवल स्थान जीव का, स्वांसा लग-लग जावै।
ठहरत नहीं पलक निसवासर, हाथ कौन विध आवै।।

बंकनाल हो पवन चढ़ावै, गगन गुफा ठहरावै।
अजपा जाप जपै बिन रसना, काल निकट नहीं आवै।।

ऐसी रहनी रहै निस वासर, कर्म भ्रम बिसरावै।
कहे कबीर सुनो भाई साधो, बहुर न भवजल आवै।।

पहले योग विधि एवं ध्यान की एकाग्रता के अनुसार सबने अपना-अपना अनुभव रहस्य में कहा है। शायद उस समय इस रहस्य की आवश्यकता रही हो। जैसा कि कबीर साहब ने कहा है -

सांच कहूं तो मार सी, यह तुरकानी जोर।
बात कहूं परलोक की, कह गह पकड़े चोर।।

पश्चिमी देशों में कई महात्माओं जैसे सुकरात आदि को सरकार ने मरवा भी दिया था। हो सकता है इस कारण से भी अध्यात्म ज्ञान को रहस्य में रखा गया हो। परन्तु अभी तक वही लकीर पीटी जा रही है। जबकि अब देश स्वतन्त्र है और हर मनुष्य को अध्यात्म विज्ञान में अपना अनुभव बताने की स्वतन्त्रता है।

शब्द

हंसा सुधि कर अपने देसा।। (टेक)

इहां आई तेरी सुधि बुद्धि, बिसरी आन फंसे परदेशा।
अबहूं चेत हेत कर पीऊं से, सतगुरू के उपदेशा।।

जौन देश से आए हंसा, कबहूं न कीन्हा अंदेशा।
आई परयो तुम मोहफन्द में, काल गहयो तेरा केशा।।

लाओ सुख अस्थान अलख पर, जा को रटत महेशा।
जुगन-जुगन की संशय छूटे, छूटे काल कलेशा।।

का कहि आयो काह करतु हो, केहां भूले परदेशा।
कहें कबीर वहां चल हंसा, जन्म न होये हमेशा।।

इस शब्द में कबीर जीव को चेतावनी दे रहे हैं कि वह यहां इस लोक में आकर अपने निज घर को भूल बैठा है और यहां इस माया के जाल में फंस गया है, उसकी आंखों पर अज्ञान का पर्दा आ गया है। वह तो यहां थोड़े दिन का मुसाफिर है। इस प्रकार कबीर जैसे सन्त समय-समय पर जीवों को चिताते रहते हैं और जिस-जिस सुरत को होश आयेगा वह सन्तों की संगत करके, वहां पहुंचने की विधि-विधान सीखकर, कमाई करके सदा के लिए निज घर चली जायेगी। इस संसार में यह परमात्मा की मौज का खेल चलता रहेगा। उस परमात्मा का खेल अजब व निराला है।

✳✳✳✳

मुक्त अवस्था

मनुष्य जीवन की सबसे बड़ी सफलता है जीवन्मुक्त अवस्था को प्राप्त कर लेना और यही उसका ध्येय व मंजिल है। परन्तु कोई करोड़ो में से एक होता है, जो इस अवस्था में जीवन जीने का इच्छुक होता है। साधारण प्राणी पूजा-पाठ, दान-पुण्य, तीर्थ-व्रत इत्यादि को ही अपना धर्म मानते हैं और इन कार्यों से सन्तुष्ट रहते हैं, परन्तु वो नहीं जानते कि अभी वो मंजिल से बहुत दूर है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि धर्म के नाम पर जो पूजा-पाठ या दान-पुण्य या कथा-श्रवण किया जाता है वो ठीक नहीं है, अपितु ये सब अपनी-अपनी जगह ठीक हैं और शुभ कर्म है। परन्तु यह जीवन्मुक्त अवस्था धर्म, कर्म और शुभ कर्मों का अन्तिम बड़ा फल है।

यह अवस्था धर्म-कर्म के सब शुभ कर्मों के बाद, किसी सतगुरू को इष्ट मानकर, उनका सत्संग सुनकर और उनसे योग-विधि समझकर, अभ्यास करने से सिद्धि शक्ति प्राप्त करने के बाद, सब योग पूरा हो जाने पर, निज रूप का अनुभव प्राप्त होने के बाद आती है। इस अवस्था को प्राप्त करने के बाद मनुष्य यहां जीवन्मुक्त अवस्था में जीवन जीते हुए अपने सत्संग में इस मुक्त अवस्था की रहनी के संस्कार के अनुसार जीवन जीने का ढंग बता देता है।

ऐसा जीवन्मुक्त पुरुष साधारण मनुष्यों की तरह साधारण वेशभूषा, रहन-सहन, भोजन और वस्त्र रखता है। उसकी विशेषता यह है कि वह हर हालत में हंसमुख और खुश रहता है और सम अवस्था में रहते हुए एक बहुत ही निराली जीवन शैली में जीवत जीता है। उसका साधन भी एक निराला ही होता है। वह योग-अभ्यास सब छोड़ देता है। ऐसे महापुरूष के पास ज्यादा भीड़ नहीं होती और जो लोग इच्छा या चाह लेकर उनके पास जाते हैं तो वह जल्दी ही उन्हें पूरी करने की विधि बता देता है और अपने लिए कुछ भेंट-चढ़ावा भी नहीं लेता यानी मुफ्त

मानव की सेवा करता है। परन्तु अधिकतर लोग भीड़ वाले महापुरूष को ही पूरा सतगुरू मानते है। जैसे –

ऐसे दीवानी भई यह दुनिया, जाने न सन्त असन्त।
जाके संग दस बीस है, ता का नाम महन्त।।

सिंहों के लेहड़े नहीं, हंसों की नहीं पात।
लालों की नहीं बोरिया, सन्त न चले जमात।।

कहने का भाव यह है कि मनुष्य का निश्चिन्त बेफिक्र, निर्भय व सहज अवस्था में आना ही उसकी आत्मिक या मुक्त अवस्था है और इस अवस्था में पहुंचा हुआ मनुष्य किसी की भक्ति या उपासना नहीं करता। जैसा कि कबीर ने लिखा है :

सन्तों सहज समाधि भली।
गुरू प्रताप भयो जा दिन से, सुरत न अन्त चली।।

आंख न मूंदू कान न रूंधूं, काया कष्ट नहीं धारू।
खुले नयन से हंस-हंस देखूं, सुन्दर रूप निहारू।।

कहूं सो नाम सुनूं सोई सुमिरन, खाऊं-पीऊं सो पूजा।
गृह उद्यान एक सम देखूं, भाव मिटाऊं दूजा।।

जहां-जहां जाऊं सोई परिक्रमा, जो कुछ करूं सो सेवा।
जब सोऊं तब करूं दण्डवत, पूजूं और न देवा।।

शब्द निरन्तर मनवा राता, मलिन वासना त्यागी।
उठत-बैठत कबहूं न बिसरे, ऐसी ताड़ी लागी।।

कहें कबीर यह उनमुन रहनी, सो प्रकट कर गाई।
दुख-सुख से परे एक परम पद, तेहि सुख रहा समाई।।

इस जीवन्मुक्त अवस्था के बहुत शब्द है जो सन्तों ने गा-गाकर साधुओं को समझाए हैं। उस समय सैन-बैन की शैली थी। अब समय बदल गया है क्योंकि सुनने वाले सब साधु वेशधारी नहीं है। आम सज्जन अब सादे तरीके से जानना चाहता है।

अब मैं अपने आप से प्रश्न पूछता हूँ कि क्या मेरे ये लेख जीवन्मुक्त अवस्था के सज्जन ही पढ़ेंगे? नहीं। ऐसी बात नहीं है। मेरा यह जीवन मुक्त अवस्था का है और मैं यह अनुभव लोगों को बताने के लिए मजबूर हूँ। यह परमात्मा की मौज है। मेरे वश की बात नहीं। शायद वही आगे आने वाली पीढ़ी में जीवन्मुक्त अवस्था के साधकों के लिए यह सब लिखवा रहा है। यह मेरा अनुभव है। कोई दावा नहीं कि यही सब सत्य हो। मेरे अनुभव के अनुसार मनुष्य ज्ञान हो जाने के बाद उसकी मौज में ही खुश रहता है। जहां परमात्मा रखता है वहीं वह खुश रहता है और उसका जीवन एक बच्चे की तरह हो जाता है।

'यत्र-यत्र मनोगच्छति।
तत्र-तत्र समाधि।।'

आवागनम से गए छूट के, सुमिर नाम अविनाशी हो।

अब यह अविनाशी नाम क्या है? जिसके सुमिरन से आवागमन नहीं होता है। क्या राम, ओ३म्, राधास्वामी या सतनाम जो मुंह से बोला जाता है, यह है? असल में यह नहीं है। इसको रटना भी नहीं है। न ही सच्चा ज्ञान सीधा ज्ञान का अनुभव है। उस परम तत्व में प्रकाश और शब्द मौज से उत्पन्न होते हैं। यह फिर आगे निर्माण करते हैं और नष्ट हो जाते हैं। यह बात मन में रखना ही सच्चा सुमिरन है उस अविनाशी नाम का। आप सुरत शब्द का अभ्यास पूरे जीवन भर करते रहें, परन्तु जीवन्मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकते। आपको सुरत शब्द अभ्यास से खुशी, आनन्द मिलेगा और इच्छा शक्ति से मन की एकाग्रता बढ़ जायेगी, परन्तु जीवन्मुक्ति नहीं मिलेगी। जब तक आपको यह निश्चय नहीं होगा कि

परमात्मा एक महान् शक्ति है और वह मेरे अन्दर-बाहर सब जगह सर्वशक्तिमान् है। उसकी रजा में राजी रहना ही जीवन्मुक्ति की अवस्था है। यह निज रूप का अनुभव होने के बाद बाहर का गुरू सब भ्रम व शंका का पर्दा उठा देता है। यह बाहर का गुरू निश्चय कराता है कि परमात्मा की मौज सबसे ऊपर है। जो कुछ पहले हुआ है, वह भी उसीकी मौज से हुआ है। जो अब हो रहा है, वह भी उसी की मौज का खेल है और जो आगे होगा, वह भी उसी की मौज से होगा।

यह सब जब उसकी मर्जी का खेल है, फिर चिन्ता किस बात की है? यह अवस्था जीवन्मुक्ति की है। मुझे आज तक किसी चीज का अभाव नहीं रहा। कल की बात यह है कि आज तक जिसने रक्षा की है, कल भी वही रक्षक होगा।

'भरोसा तेरा है, तेरी आस मन में।'

यह जो मेरा निज रूप है परमात्मा का ही अंश है। यह मेरे घट में और बाहर सब जगह व्याप्त है। इसका भरोसा यानी परमात्मा का जो हर जगह हाजिर है। यह निश्चय गुरू फकीर दयाल ने करा दिया अब किस की चिन्ता, किसका डर? परमात्मा मेरे अंग संग है ओर हर समय रक्षक है।

पूरे अध्यात्म ज्ञान का सार नीचे दो शब्दों में लिखकर समझाने का प्रयत्न कर रहा हूँ। आप ध्यान से पढ़कर देख लें :

शब्द

मंगलम् गुरूदेव मूर्ति, मंगलम् पद पंकजम्।
मंगलम् अव्यक्त अनुपम्, मंगलम् भव गंजनम्।।

मंगलम् धुरपद निवासी, मंगलम् सत आसनम्।
मंगलम् निर्वाण सद्गति, मंगलम् जन रंजनम्।।

मंगलम् ज्ञान स्वरूपम्, मंगलम् आनन्द रूप।
मंगलम् चैतन्य सदनम्, मंगलम् सत सत्य भूप।।

मंगलम् योगेन्द्र मायातीत, मंगलम् फल दायकम्।
मंगलम् त्रयगुण रहित, अपरोक्ष परोक्ष निवासनम्।।

आदि कारण मूल कारण, मध्य आदि अनन्त जो।
मंगलम् करुण सदनम्, शुभ तत्त्व जगत प्रभो।।

आप प्रकटे इस जगत में, जीव काज सुधारने।
शब्द नाव बनाया सुन्दर, जीव दुखिन उबारने।।

प्राण तन-मन-कर्म-वाणी, सब हैं अर्पण लिजिए।
मैं हूँ शरणागत तुम्हारा, दास अपना कीजिए।

राधास्वामी राधास्वामी राधास्वामी, जप सदा।
त्याग जग के मोह धन्धे, पाऊं भक्ति सम्पदा।।

इस शब्द का भावार्थ यह है कि मनुष्य एक इष्ट मानकर, उसमें परमात्मा के सब गुण मानकर, उसका ध्यान करके जो कुछ भी इस संसार में चाहता है वह सब उसको ध्यान की एकाग्रता के कारण सहज ही मिल जाता है। इस शब्द के अनुसार मंगलाचरण परमात्मा को जिस रूप में आपका विश्वास है, उसे पूरा मानो और प्रारब्ध कर्म भोगते हुए, सुन्दर विचार रखते हुए इस लोक के जीवन को सुन्दर बनाते हुए खुशी के साथ जीओ। और अपने अन्तर में स्थित मंगलाचरण वाले शब्द को साधन में इष्ट मानकर अपनी सुरत को निज घर ले जाओ। यही सुरत को मंजिल तक ले जायेगा।

शब्द

गुप्त अपने आप में जब अलख अगम अनाम आप।
जब प्रकट आनन्द ज्ञानाकार, अरू सत धाम आप।।

साज सन्त समाज मंगल, काज जीव उधार को।
आप ने धारण किया है, परम सन्त अवतार को।।

आप हैं आधार सबके, आपके आधार सब।
वारपार से रहित आप हैं, और वारापार सब।।

सैन बैन का आसरा, सत्संग द्वारा ज्ञान दें।
शब्द योग सिखाया अनहद, धाम पद निर्वाद दें।।

धन्य सतगुरू फकीर दयाला, पार भव से कीजिए।
भक्ति मुक्ति योग युक्ति, ज्ञान शक्ति दीजिए।

इस प्रकार इस निज रूप का अनुभव करने के लिए यह सार शब्द का योग आवश्यक है। बिना सार शब्द योग के इस सुरत का मंजिल पर पहुंचना सम्भव नहीं है। मैं अपने आपको भाग्यशाली समझता हूँ जो मैं बहुत ही सहज में संसार के सब काम-काज करते हुए और दुनिया के सब खेल करते हुए अपने निज रूप का अनुभव 1962 से करता आ रहा हूँ जबकि आध्यात्मिक दुनिया के सज्जन कहते हैं कि यह अवस्था शायद कई जन्मों के यत्न के बाद प्राप्त होती है। मुझे जो कुछ मिला है, बहुत सहज में मिला है। जैसा गुरू नानक देव जी ने कहा है -

पूरा सतगुरू खोजिए, पूरी होये जुगत।
खांदिया, पिंदिया, खेलदिया, विच्चे होये मुक्त।।

जीवन्मुक्त अवस्था में जीवन जीने की शैली इस प्रकार है :

तेरी मौज में रहकर, निशदिन सुखी हूँ।

न चिन्ता न भय है, न जग से दुखी हूँ।।

चाह गई चिन्ता मिटी, मनवा बेपरवाह।
जिनको कछु न चाहिए, वही शहनशाह।।

चाह चमारी चुहड़ी, सब नीचन की नीच।
तू तो ब्रह्म समान था, चाह न होती बीच।।

प्यारे पाठकों! मैंने आज तक का जीवन गुरू कृपा से अति खुशी, उमंग, लगन, उत्साह व आस-विश्वास का जीया है। कल की कुछ कह नहीं सकता, परन्तु अब मेरी रहनी यह है कि मैं परमात्मा की रजा में राजी हूँ। जहां व जैसा वह रखे, उसी में मेरी खुशी है। यानी मैं विचारों में नहीं रहता और न ही दूसरों के विचारों से प्रभावित होता हूँ, इसलिए मालिक की मौज में हूँ और उस मालिक पर मुझे पूरा भरोसा है।

इस प्रकार मैं सहज योग और सहज समाधि का योगी रहा हूँ। ध्यान इतना गहरा बन गया कि दुनिया की किसी भी अच्छी या बुरी घटना ने मेरा ध्यान भंग नहीं किया। हां, कभी-कभी थोड़ी देर के लिए जरूर मन के मण्डल पर आ जाता हूँ, लेकिन फिर उसी ही क्षण जीवन्मुक्त अवस्था में चला जाता हूँ।

यह अब चौदहवीं पुस्तक लिख रहा हूँ, जो किसी मन्दिर, गुफा या एकान्त में बैठकर नहीं लिखी है, अपितु दुनिया की सब चुनौतियों के बीच जीवन जीते हुए लिखी है। इन सब चुनौतियों में परमात्मा का एक नाटक देखता हूँ। ये जिनती सांसारिक, सामाजिक घटनाएं देखता हूँ, सब स्वपन के समान परमात्मा का ही एक नाटक है। इनका मेरे मन पर दुख-सुख का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। मेरी सहज समाधि बनी रहती है ओर मैं अपना काम करता रहता हूँ। इन्हें मैं अपना नहीं समझता हूँ क्योंकि यह सब उसी का काम है। मैं अपने आपको इन सबका कर्त्ता नहीं मानता। बस यह एक छोटी-सी बात है। अगर समझ और अनुभव में

आ जाए तो यह दुनिया स्वर्ग है, नहीं तो हाल आप देख ही रहे हैं। पूरी दुनिया की मानव जाति का अज्ञान के कारण बुरा हाल है। यदि कोई शुभ कर्म हैं तो मनुष्य को कोई दयालु, परम दयालु सन्त सज्जन मिल जाए जो सब तरह के अज्ञान को दूर करके आपको शिव-संकल्प व उत्तम संस्कार देकर इस जीवन को सुन्दर बनाने की विधि बता दे जिससे आपको सही समझ बुद्धि, विवेक, अनुभव व ज्ञान मिल जाए। उस महापुरूष के सत्संग से इस संसार को नाटकशाला की तरह देखने व समझने वाली बात मालूम हो जाए कि यहां कोई सुखी नहीं है। तब गुरू जी से सदा रहने वाला सुख, आनन्द और शान्ति को प्राप्त करने की विधि पूछी जाये और विधि सीखकर निज रूप का अनुभव प्राप्त कर लिया जाए, तब उस अनुभव को करते-करते वह जीवन्मुक्त पद को प्राप्त कर लेता है। यह पद केवल मनुष्य योनि में ही प्राप्त किया जा सकता है। प्राकृतिक देवता जैसे सूर्य, चांद इत्यादि या दूसरी योनि के पशु-पक्षी तथा स्थूल लोक के अन्य जीव कोई भी इस मुक्ति को प्राप्त नहीं कर सकता है। केवल मनुष्य ही इस पद का अधिकारी है।

मेरी ये सभी पुस्तकें पढ़ने से आपका बुद्धियोग, ध्यानयोग, ज्ञानयोग व भक्तियोग सब सिद्ध हो सकते हैं। मैं आपको भगवां कपड़े पहनने वाला, गृहस्थ का त्याग करने वाला साधु नहीं बनाना चाहता हूँ, अपितु सही समझ, विवेक व बुद्धि देकर, मन को नियन्त्रण में रखकर अन्तर में अनुभूति करवाना चाहता हूँ। मैं अन्य गुरूओं की तरह शिष्यों की भीड़ अपने पास रखना नहीं चाहता हूँ। मैं तो चाहता हूँ कि लोग मेरी बात को समझे, बाहर न भटके और अपने अन्तर में उस परमात्मा को खोजें। अतः सहज में दुनिया के सब काम करते हुए, अपनी आजीविका कमाते हुए अपने मन को साधु बनाओ। शरीर का वेष बदलने वाले खुद भी धोखे में हैं और दूसरों को भी धोखे में डाल रहे हैं।

'मन जीते जग जीते।'

यह सब योग मन को साफ करने के लिए है। केवल सच्चा मार्ग दर्शन करने वाले जीवन्मुक्त पुरूष की संगत जरूरी है। अगर कोई यह

प्रश्न करे कि जीवन्मुक्त पुरुष कहां से मिले? तो मैंने आपको इसी पुस्तक में बताया है कि यह संसार संकल्पमय है। आप यह विचार रखें कि मुझे कोई ऐसा जीवन्मुक्त पुरूष या गुरू मिले जिससे मैं इस लोक में भी शान्ति से रह सकूं और निज रूप का अनुभव करके सदा के लिए शान्ति प्राप्त कर सकूं। केवल मन में सच्ची लगन, चाह व विचार रखें। आपको सहज ही ऐसा सज्जन मिल जायेगा।

मैंने आपकी सेवा में जीवन्मुक्त पद के विषय में टूटे-फूटे शब्दों में अपना अनुभव लिखने का प्रयास किया है। कहां तक सफल हूं यह तो पाठकगण ही निर्णय करेंगे। मेरी दृष्टि में तो यही आया है कि सब योग साधन पूरा होने पर अन्त में शरणागत का सहारा है।

'भरोसा तेरा है, तेरी आस मन में।
लगा रहता हूँ, तेरे सुमिरन भजन में।।'

यह भरोसा कैसे हुआ?

'गुरू परम दयाल ने आकर चेताया।
मेरा रूप मुझको सहज में लखाया।।'

गुरू का रूप क्या है, जो मुझे लखाया?

नमो सतगुरू सच्चिदानन्द रूपम्।
नमो अद्भुतम् अद्वितीयम् अनुपम्।।

नहीं रूप कोई है, सब रूप तेरे।
तेरी सब प्रजा है, और भूप तेरे।।

यह स्थिति सब योग पूरा होने पर, निज रूप का अनुभव होने के बाद जीवन्मुक्त अवस्था के सज्जन की रहनी है। पीछे कई शब्दों व पुस्तकों में थोड़ा-थोड़ा लिखा है। यह पुस्तक मेरी योग्यता के अनुसार पूरी तरह खोलकर जीवन्मुक्त पद पर लिखी है। कोई दावा नहीं है कि यही सच्चाई है। मैंने जो अनुभव किया है वही लिखने का प्रयत्न किया है।

सबको शान्ति शान्ति शान्ति।

मुक्त अवस्था का शब्द

साधो सतगुरु अलख लखाया।
जब आप आप दरशाया।।
बीज मध्य ज्यों वृक्षा दर से, वृक्षा मध्ये छाया।
परमात्म में आत्म दरसे, आत्म मध्ये माया।।
ज्यों नभ मध्ये सुन्न दिखाये, सुन्न अण्ड आकारा।
निःअक्षर से अक्षर तैसे, क्षर अक्षर विस्तारा।।
ज्यों रवि मध्ये किरण देखिये, किरण मध्य परकाशा।
परमात्म से जीव ब्रहम इमि, जीव मध्य तेहि स्वासा।।
स्वासा मध्ये शब्द दिखावे, अर्थ शब्द के माहीं।
ब्रह्म से जीव जीव से मन, यूं न्यारा मिला सदा ही।।
आप ही बीज आप अंखुवाई, आप फूल फल छाया।
आप ही सूर किरण प्रकाशा, आप जीव ब्रह्म माया।।
अंडकार सुन्न नभ आपहिं, स्वांस शब्द अर्थाया।
निःअक्षर अक्षर क्षर आपहिं, मन जीव ब्रह्म समाया।।
आत्म में परमात्म दरसे, परमात्म में झाईं।
झाईं में परछाई दरसे, लखे कबीरा साईं।।

✳✳✳✳

जा कारण जग ढूंढ़िया, देखे देश विदेश।
पिया मिलन जब हो गया, आंगन हुआ विदेश।।

बिन पांवों का पंथ है, बिन बस्ती का देश।
बिना देह का पुरुष है, कहे कबीर सन्देश।।
मैं वासी उस देश का, जहां सत् पुरुष की आन।
दुख सुख कुछ व्यापे नहीं, सब दिन एक समान।।
मैं वासी उस देश का, जहां बारह मास विलास।
प्रेम झरे विगसे कमल, तेज पुंज प्रकाश।।
संशय करुं न मैं डरुं, सब दुख दिए निवार।
सुन्न शिखर पर घर किया, पाया नाम आधार।।
उलट समाना आप में, प्रगटी जोति अनन्त।
साहब सेवक एक संग, खेलें सदा बसन्त।।
हिल मिल खेलूं शब्द में, अन्तर रही न रेख।
समझे का मत एक है, क्या पण्डित क्या शेख।।
हम वासी उस देश के, जहां पारब्रह्म का खेल।
दीवा बले अगम का, बिन बाती बिन तेल।।
राम जपत नहिं नाम को, नाम जपत है धीर।
ताहू ते कुछ परे है, ता को जपे कबीर।।

✳✳✳✳

अब तक प्रकाशित पुस्तकों की सूची

क्रम	पुस्तक का नाम	प्रथम सं०/ प्रतियां	द्वितीय सं०/ प्रतियां	तृतीय सं०/ प्रतियां	चतुर्थ सं०/ प्रतियां	पंचम सं०/ प्रतियां
1.	लाल कमल	1000 4/03	2000 8/05	4000 12/06	4000 6/08	
2.	सहज योग	2000 8/03	3000 8/05	4000 7/07	4000 1/09	
3.	सुखी जीवन का रहस्य	3000 10/03	4000 8/05	4000 2/07	4000 1/09	
4.	मानव धर्म व अध्यात्म ज्ञान	4000 1/04	4000 9/05	4000 3/08		
5.	मानव जीवन का सुखमय सफर	4000 3/04	4000 9/05	4000 3/08		
6.	मनुष्य का कर्त्तव्य और धर्म	4000 6/04	4000 2/07	4000 7/08		
7.	प्रश्नोत्तरी ज्ञान गंगा	4000 10/04	4000 2/07	4000 7/08		
8.	मेरी धार्मिक खोज	4000 5/05	4000 10/05	4000 7/08		
9.	Secret of Happy Life	2000 4/05	2000 2/07			
10.	ज्ञान योग	4000 4/06	4000 9/07	4000 2/09		
11.	तत्व ज्ञान दर्पण	4000 5/06	4000 9/07	4000 2/09		
12.	योग मणि	4000 6/07	4000 3/08	4000 4/09		
13.	कैलेण्डर	1000 3/04	2000 10/05	4000 2/07	4000 7/08	4000 4/09
14.	आवागमन	4000 9/08	4000 4/09			
15.	Jeewan Mukti	1000 10/08				
16.	लोक सुखी परलोक सुहेले	4000 06/09				
17.	जीवन्मुक्त अवस्था	6000 10/09				

ये सभी पुस्तकें हमारी website : www.shwetkamal.in पर भी उपलब्ध है।